ओ३म

# जन-ज्ञान (मासिक)

१६ नवम्बर से १५ दिसम्बर १९९२

२८ फरवरी, १८६५ जन्म दिवस

१७ नवम्बर १९२८ बलिदान दिवस

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
धर्म पै मरने वालों का यही नामो निशां होगा।

# अमृत-आत्म-ज्ञान

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्राविवेश ।।
ऋ० १.१६४.२१ ।। अ० ६.६.२२ ।।

## शब्दार्थ

(यत्र) जहाँ इस शरीर में (सुपर्णाः) सुपतनशील इन्द्रियाँ (अनिमेषं) निरन्तर (अमृतस्य) अमृत ज्ञान के (भागं) अपने भाग को लेकर (विदथा) वेदन के साथ (अभिस्वरन्ति) चल रही हैं, मानों बोल रही हैं (अत्र) उस इस मेरे शरीर में (विश्वस्य भुवनस्य) सब ब्रह्माण्ड का (इनः) ईश्वर (गोपाः) और सब भुवन का रक्षक (सः धीरः) वह धीमान् ज्ञानमय (पाकं मा) मुझ पक्तव्य में (अपरिपक्व में) (आविवेश) प्रविष्ट होवे।'

## भावार्थ

मनुष्य एक कच्चे घड़े के समान है जब तक कि वह आत्म-ज्ञान की अग्नि में पक नहीं जाता। मैं कच्चा घड़ा इस संसार सागर में पड़ा हुआ घुल रहा हूं, नष्ट होता जा रहा हूं। हे जगदीश्वर ! यदि तुम्हारे ज्ञान की अग्नि की आंच मुझे शीघ्र पका न देगी तो मैं जल्दी ही खतम हो जाऊँगा। मैं अभी तक 'पाक' हूं, तुम अमृत हो, मैं भी अभी तक मर्त्य हूँ। तुम इस भुवन के ईश्वर हो, मैं अनीश हूं। जिस दिन मुझे आत्मा का ज्ञाने हो जायेगा अपनी अमरता का भान हो जायेगा तो मैं भी पक जाऊँगा। आत्मज्ञानी, अमर, परिपक्व होकर मैं तो संसार में पड़ा हुवा भी गल नहीं सकूंगा। मुझमें प्रविष्ट होकर मुझे अमर कर दो, पका दो। कच्चे घड़े में (शरीर में ) यद्यपि इन्द्रियाँ लगातार कुछ न कुछ ज्ञान लाती हुई चल रही हैं पर उनके लाये हुवे ज्ञान में-जुगुनू के से तुच्छ प्रकाश में वह अग्नि नहीं है जो मुझे पका सके। सच तो यह है कि वे इन्द्रियाँ जिस पूर्ण अमर ज्ञज्ञन के एक अंश को अपने वेदन में लाती हैं उसी की अभिलाषा अब मुझे लग गई है। उन्हीं द्वारा पता लगा है कि कोई अमृत ज्ञान भी है जिसके द्वारा मैं पूरा पक सकता हूं । इन्द्रियों में जो वेदन है वह तुम्हारे ही अपार ज्ञान, अनन्त चैतन्य से आता है। यह समझ आ जाने पर आज ये इन्द्रियाँ मेरे लिये जो कुछ ज्ञान लाती हैं उसमें मुझे अमरता का ही संदेश सुनाई देता है, ये जो भी कुछ वेदन करती हैं उसमें मुझे वे यही बोल रही हैं "तू अमर बन, अमर बन; अपने को पकाले, पकाले" अतः हे सब ब्रह्माण्डके स्वामी ! मुझे पक्का करने के लिये तुम मेरे इस शरीर के भी स्वामी हो जावो, हे त्रिभुवन के रक्षक! इस शरीर की भी रक्षा करो। हे धीर! ज्ञानमय! तुम्हारे प्रविष्ट हुवे बिना यह कच्चा घड़ा कब तक रक्षित रह सकता है?

* * *

ओ३म्
जनज्ञान
कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्
वेदाः
नई दिल्ली

हिन्दु राज्य स्थापना हेतु संघर्ष करो

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

कार्यालयः
२२८६ आर्यसमाज मार्ग, करौल बाग,
नई दिल्ली-११०००५
दूरभाष : ५७२४७४१

प्रधान कार्यालय
वेद मन्दिर, महात्मा वेदभिक्षुः सेवाश्रम
लेखरामनगर (इब्राहीमपुर) पो० मुखमेलपुर
दिल्ली-३६
दूरभाष :७२०२२४६

संस्थापक
स्वर्गीय महात्मा वेदभिक्षुः

सम्पादक
पंडिता राकेश रानी

अवै-सहसम्पादक
विमलचक्षुः

वार्षिक मूल्य - ५० रुपये
आजीवन - ५०१ रुपये
एक प्रति - ६ रुपये
विदेश में विमान से, ५० पौंड, ६५ डालर
समुद्री डाक से ७ पौंड, ६५ डालर
विदेश में आजीवन ५००१ रुपया
जौलाई १९९२ वर्ष २७ अंक ३

*सम्पादकीय*

# अजयमेरू से अफगानिस्तान तक
# एक ही स्वर और एक ही भनक

महर्षि दयानंद की निर्वाण स्थली अजयमेरू (अजमेर) में सांप्रदायिकता के विषधर की फुंकार से अनेक निर्दोषों के जीवन का आधार-उनका कारोबार अग्नि की ज्वालमालाओं में क्षार-क्षार हो गया । टीस और वेदना ही मिली उन्हें दीपोत्सव पर अजमेर में मजहबी उन्मादियों ने जंगी उद्घोष गुंजाते हुए अपने चेहरों पर पडे नकाब हटाते हुए दीपावली को रक्त के फाग और आग के त्यौहार में बदल दिया। इस कांड के बाद वहां की स्थिति के बारे में प्रमुख अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार नगर में कर्फ्यू ग्रस्त क्षेत्रों में घर-घर की तलाशी ली गयी। तलाशी के दौरान 'दरगाह' के आस-पास के क्षेत्र को मादक पदार्थों का अवैध धंधा करने वालों और अन्य अवांछनीय तत्वों द्वारा गुप्त गतिविधियों के लिये एक 'द्वीप' में परिणत कर देने की एक योजना का पता कुछ दस्तावेजों के आधार पर लगा है। यह बात भी प्रकाश में आई कि इस क्षेत्र में गैर-मुस्लिमों की सम्पत्तियां बढ़े-चढ़े दामों पर खरीदी जाती रही हैं और चुप्पी साधे हुए अधिकारियों को इस संभावना से इंकार नहीं है कि क्षेत्र का उपयोग जासूसी गतिविधियों के लिये होता रहा है। पुलिस और प्रशासन ने यह दावा भी किया कि तलाशियों के दौरान "भारी मात्रा" में हथियार भी बरामद हुए। अधिकारियों ने यह आशंका भी जताई है कि वहाँ विद्यमान तनाव के कारण अनेक व्यक्ति इस क्षेत्र में अपनी सम्पतियों को बेचकर सुरक्षित स्थानों पर जा सकते हैं। स्पष्ट है कि यदि ऐसा होता है तो यह उन राष्ट्र विरोधी तत्वों की छावनी बन जाएगा जो इस देश की धरती में ही खाकर और गाकर भी इसे खाक में मिला देने के घिनौने सपने अपने शरारती नेत्रों में संजो रहे हैं।

दूसरी ओर दृश्य है कश्मीर की उस स्वर्गोमय धरा का जिसे साम्प्रदायिकता के प्रसारकों ने पड़ोसी देशों की शह, और समर्थन से हर्षोल्लास के आगार से मजहबी उन्माद के अलाव में परिवर्तित कर दिया है। उन तत्वों के अत्याचार से संत्रस्त [illegible] निरीह हिन्दू कश्मीर घाटी से पलायन कर दिल्ली की सड़कों पर विस्थापित जीवन करने पर विवश हो गए हैं। पूर्वोत्तर भारत शिलांग नगर में उस दिन तीस वर्षीय सुरेन्द्र कुमार गोयल को एक पंथ विशेष के अनुगामी आंतकवादियों ने सरे आम जला दिया। उसका कसूर यह था कि वह बेकसूर था, हाँ वह हिन्दू जरूर था।

स्वदेश की माटी में इस धरती के कण-कण को पावन मानकर उसकी वन्दना-अर्चना करने वाले राष्ट्रभक्त जन का जीवन संकटापन्न बनता जा रहा है। विदेशों में भी शरजाह में ११ भारतीयों को इसलिए छह वर्ष का कारादंड दिया गया कि उन्होंने एक प्रगतिशील लेखक द्वारा लिखित नाटक वहां मंचित किया था, जिसके अंशों पर उन्हीं के एक वर्ग विशेष के हम वतनों ने आपत्ति व्यक्त की थीं हमारे देश के एक कर्णधार शरजाह गए तो उन्होंने आपदा ग्रस्त स्वदेश बांधवों की सहायता करने के स्थान इस वचनामृत का उपहार ही दिया कि भारतीयों को अतिथेय (मेजबान) देश की भावनाओं के अनुरूप अपना व्यवहार ढालना चाहिए।

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादकः पंडिता राकेश रानी द्वारा 'जनज्ञान' मुद्रणालय दिल्ली-३६ से मुद्रित एवं प्रकाशित

इस उपदेश का तात्पर्य यही है कि कोई भारतीय वहाँ जाए तो अपना धर्मग्रन्थ या अपने किसी आराध्य का चित्र तक भी पूजा उपासना के लिए साथ नहीं ले जाए। पश्चिम एशिया के कुछ देशों में तो स्थिति यह है कि वहां किसी हिन्दू का निधन हो जाए तो वहां उसका अंतिम संस्कार तक भी नहीं हो सकता और उसका शव भारत लाना पड़ता है।

अफगानिस्तान में हुए सत्ता परिवर्तन के बाद से अनेक पीढ़ियों से वहां आबाद सैकड़ों केशधारी और सहजधारी हिन्दू परिवारों को पलायन कर भारत आने पर बाध्य होना पड़ा है। वहाँ उन्हें अपना जीवन प्रतीत नहीं हो रहा। विधि की विडम्बना ही है कि जो हिन्दू कुछ वर्ष पूर्व तक ही उस देश में व्यापार के प्रमुख सूत्रधार थे। वे आज अमृतसर और दिल्ली की गलियों में बेघरबार हैं।

स्वदेश और विदेश सर्वत्र ही स्थिति विद्रूप सी ही प्रतीत हो रही है। वोटों के सौदागार बंगलादेशी घुसपैठियों के लिए दोनो बाहें प्रसार कर उनकी अगवानी करते दिखायी देते हैं तो कश्मीर को फिरकापरस्ती की भट्टी में झोंकने वाले उग्रवादियों के साथ सैनिक बलों द्वारा यथोचित व्यवहार और पंजाब में पाकिस्तान के समर्थन से संहार और विनाश के खेल खेलने वाले आतंकवादियों पर अंकुश के लिए सक्रिय बलों की आलोचना में तथाकथित मानव अधिकारवादी ब्यानों के अम्बार लगा रहे हैं किंतु मजहब की आड़ में स्वदेश को फिरकापरस्तीकी भट्टी में दग्ध करने के लिए अहर्निश सक्रिय राष्ट्र विरोधी-तत्वों द्वारा श्रद्धास्थलों को अपमानित करने शोभा यात्राओं पर बम फेंकने वालों के खिलाफ उन्हीं मानवाधिकारों के पुजारियों के श्रीमुख से एक भी शब्द निकल पाना कठिन हैं। इतना ही नहीं अपितु सरकार भी उन कट्टरपंथी तत्वों के समक्ष लाचार सी ही प्रतीत होती है जो अपनी धौंस प्रदर्शित कर कानून और संविधान की सत्ता को ही चुनौती दे रहे हैं। सलमान रश्दी की पुस्तक पर बिना पढ़े ही प्रतिबंध लगा देने वाली सरकार के कुछ तत्वों की ओर से जामिया मिलिया के उन प्रो० मुशीरूल हसन को भी विरोध ही सहना पड़ता है, जिनका एकमात्र गुनाह यह कह देना भर ही है कि रश्दी का कथन गलत था, पर उसे अपनी बात कहने का अधिकार तो है हीं पटना की खुदाबख्श लाइब्रेरी के निदेशक डा० आबिद रजा के विरूद्ध इसीलिए फतवे दिए जा रहे हैं क्योंकि उन्होने यह कहने का साहस दर्शाया था कि हिन्दू काफिर नहीं हैं ने मात्र हिन्दू ही नहीं अपितु केरल में त्रिशूर के एक ईसाई विद्यालय सेंट थामस हाई स्कूल के प्रिंसिपल को इस्लामी सेवक संघ धमकी दे सकता है उन्होंने एक खास तरह की टोपी को विद्यालय के छात्रों के गणवेश में शामिल नहीं किया है।

परिस्थितयां विषम हैं स्वदेश में वोटों के सौदागर राष्ट्र की एकता और अखंडता से खिलवाड करने वाले तत्वों की चरण वंदना में रत है, तो सत्ता विदेशों में भारतीयों और भारतवंशियों के शोषण, दमन और उत्पीड़न पर कोई भी कदम उठाने के मामले में असमंजस ग्रस्त हैं।

जम्मू कश्मीर के पूर्व राज्यपाल श्री जगमोहन के शब्दों में आज वहां कश्मीर घाटी में आतंकवादियों की समानान्तर सरकार चल रही हैं। उन्होंनें देशभक्त कश्मीरी पंडितों पर भीषण प्रत्याचर किए, फिर भी सरकार चुप बैठी रही और तथाकथित मानवाधिकार वादी संगठन जुल्म सहने वालों की आवाज न उठाकर जुल्म करने वालों के बकील बन कर सामने आए। उन्होने इस प्रकार का अप प्रचार भी किया मानो कश्मीर शुरू से ही मुस्लिम बहुल रहा है और उसका भारत या भारतीय संस्कृति से कोई संबंध ही नहीं था क्या इससे बढ़कर कोई झूठ हो सकता है ?'

इतिहास साक्षी है कि यही कश्मीर वैदिक संस्कृति का उद्गम केन्द्र रहा है। वहां भी धरती पर ऐसे अनेक तपस्वी जन और विद्वान हुएं जिन्होंने चीन और खेतान तथा अफगानिस्तान तक हिन्दुत्व की संजीवनी सुधा को कण-कण में प्रवाहित किया था। कश्मीर ही नहीं अपितु अफगास्तिान भी प्राचीन काल में वैदिक ज्ञान और साधना की तपस्थली के रूप में विरकात रहे थे।

दुर्भाग्य यही है कि छद्म सेक्युलर और पथ भटके बुद्धिजीवी ऐतिहासिक तथ्यों से नेत्र मूदकर ऐसे हवाई प्रस्तावों को अम्बार लगा रहे हैं जो स्वदेश के लिए घातक सिद्ध हो जाते हैं।

देश को सर्वोपरि न मानने की मानसिकता, हिन्दुत्व की वसुधैव कुटुम्बकम" की विचारधारा में संकीर्णता खोजने की मानसिकता, धर्म को मजहब और पथ तथा मत मतान्तरों के समकक्ष खड़ा करने की मानसिकता , **माता भूमि पुत्रोऽहम्** के वैदिक संदेश में संकीर्णता खोजने की मानसिकता के कारण ही आज केवल कश्मीर ही नहीं अपितु पंजाब, असम और बिहार जैसे क्षेत्रों में भी आतंक और अलगाववाद विस्तार पर रहा है तो इसी मानसिकता के कारण विदेशों में भारतीयों और भारत वंशियो की पीड़ा पर मौन ओर भला वह मेरे हैं ही कौन की सोच बल पाती रही हैं।

परिस्थितियों की मांग है कि देश राजनीतिक मंच पर सरदार वल्लभ भाई पटेल सरीरवे गतिशील नेतृत्व उभरे जो पाकिस्तान समर्थक और उसके द्वारा समर्पित आतकंवादियें और कतिपय विदेशी शक्ति के उन क्रीतदास तत्वों से भी कड़ाई के साथ निपटे जो इस देश में जन्म कर भी इसकी संसार में ख्वारी को ही अपने मानव अधिकरवाद का माध्यम बना रहे हैं।

देश के धार्मिक मंच पर भी उभरें देव दयानंद और आदि शंकराचार्य जैसे प्रखर पुरूष जिनके लिए देश की एकता और अखंडता ही सर्वोपरि है और जो मत मजहब और पंथों तथा सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर राष्ट्र का मार्ग दर्शन हित और राष्ट्रहित को गौण बना देने की विनाशक प्रवृति से स्वराष्ट्र को उबार सकें । जो मोहग्रस्त जन को सत्य का दर्शन करा सके और भारत की इस पुनीत बसुन्धरा को शक्ति और भक्ति से समृद्ध और मंडित कर इस योग्य बना सके कि वह अजेय राष्ट्र के रूप में विश्व के रंग मंच पर उभर कर यह वैदिक उद्घोष गंजा सके

**"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया"**

# इस अंक में पढ़ें

(आवश्यक नहीं कि सम्पादक लेखकों की रचनाओं में अभिव्यक्त सभी विचारों से पूर्णतः सहमत हो।)


सम्पादकीय १

हिमालय से टकराने को मन करता है/
महात्मा वेदभिक्षु की अमर वाणी ४

आप ही के पत्र ५

कश्मीर मे राजनीतिक पहल ६

वेद अपौरूषेय और अपविर्तनीय है/
डा० श्रीधर भास्कर वर्णोकर ८

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय /
दीनानाथ सिद्धांतालंकार १२

राष्ट्र की समस्यायें और समाधान/
बालासाहेब देवरस १८

हमारा राष्ट्रीय नाम – एक प्रश्न चिन्ह/
डां० शैलेन्द्र ललित २०

वहां मन्दिर था यह साबित हो चुका है/
बलदेवराज ग्रोवर २७

कर्ण की उदारता (कथा)/
शैलेन्द्र भार्गव ३०

तरूण शहीद सराबा / क्रांन्तिकारी ३१

मेरे गांव को क्यां हो गया है। ३५

सेवा और समर्पण का एक नाम है-भगिनी निवेदिता/
सुनीता महाजन ३७

पिंकी ने अच्छा काम किया/
स्वाति ३८

काश वह विप्लवी सन्यासी जीवित होता/
वचनेश त्रिपाठी साहित्येन्दू ३६

घाटा (कहानी) /
अनुः कुलदीप अविनाश भंडारी ४२

१८५७ महर्षि दयानन्द और श्री निहालसिंह आर्य /
डां० भवानीलाल भारतीय ४४

समाचार दर्शन ४८



## आप हमें इस प्रकार भी सहयोग दे सकते हैं।

५०१ रु० भेज कर

**जनज्ञान मासिक के आजीवन सदस्य बनिए।**

तथा २०१रु. का उपहार साहित्य (१५१ रु. के अमूल्य ग्रन्थ "वैदिक सम्पति" और ५० रु० की "वैदिक गीता" हिन्दी भाष्य सहित) प्राप्त कीजिए।

दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, महात्मा वेदभिक्षुः सेवाश्रम इब्राहीमपुर, पो. आ. मुखमेलपुर, दिल्ली-११००३६

जो भी है हिन्दू का घर, गूंजे वहां वेद का स्वर

(परमात्मा की अमरवाणी)

**चारों वेदों का हिन्दी भाष्य**

(मन्त्र -शब्दार्थ-छन्द-स्वर-देवता आदि सहित)

लागत मूल्य ७००रु० । साथ में ३०१ रु० का श्रेष्ठ वैदिक साहित्य (वैदिक सम्पत्ति, महाभारत एवं गीता हिन्दी भाष्य सहित तथा अन्य उपयोगी साहित्य) उपहार में प्राप्त करें।

साहित्य न लेना चाहें तो सम्पूर्ण वेदभाष्य ५२५ रुपये में प्राप्त करें।

२२८६, आर्य समाज मार्ग,करोलबाग, नई दिल्ली-५

# हिमालय से टकराने को मन करता है

सब [illegible] है कि आज का तूफान और अधर्म की आंधी हिमालय सी शक्ति धारण कर अभिमान से सिर उठाए खड़ी है। समय के प्रवाह ने बड़े-बड़ों को पांगल [illegible] दिया है। सारी परिभाषाएँ बदलती जा रही हैं। युग की मान्यताओं में परिवर्तन आते जा रहे हैं। अधर्म धर्म के नाम पर फैलता जा रहा है। कभी कभी तो अनुभव होता है कि कहीं वह समय न आ जाए कि हम असत्य को ही सत्य और सत्य को असत्य समझने लग जाएँ।

अधर्म की शक्ति देखकर बड़े-बड़ों ने घुटने टेक दिए हैं। सभी हार मान कर युग के साथ बहने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु यह सब कुछ देख कर भी हम पीछे हटने को तैयार नहीं, हमारा तो हिमालय से टकराने को ही मन करता है।

मन करता है कि हम इस अधर्म के हिमालय की हस्ती मिटा दें। मस्ती से झूमते हुए सत्य का संबल लेकर बढ़ें और पापों के तूफान को चकनाचूर कर दें। बदलती हुई दुनियां के साथ बदलने को हमारा मन नहीं करता, हम तो अपने को मिटा कर भी दुनियां को अपनी दुनियां बनाना चाहते हैं।

रिश्वत, सिफारिश, झूठ, धोखे और जालसाजी के वातावरण में भी हमारा सिर झुका नहीं, किसी प्रभु के पुत्र का सिर झुक भी नहीं सकता। इसलिए हम प्रभु पुत्रों को आवाज लगाकर कहते हैं। कि वे जहां भी हों इकट्ठे हो जाएँ और आर्य सेना सजाकर शैतान को मिटाने के लिए युद्ध का बिगुल बजाएँ।

जीवन की बहार आएगी और जाएगी, जिन्दगी गीत गांएगी और मुस्कराएगी पर अगर पाप की आग जलती रही तो हर घर शमशान [illegible]गा। दुल्हन का सुहाग बसने से पहले ही उज[illegible]र आएगा। मरघट को ढूँढने कहीं भी जानेकी आवश्यकता कोई अनुभव नहीं करेगा ...... हर द्वार पर मरघट नजर आएगा यदि पाप इसी तरह फैलता रहा और धर्म उजड़ता रहा।

हमारी नजर में तो शहादत का जाम पीने का वक्त आज आ गया है। और वे नौजवान जिनकी रगों में पानी नहीं खून बहता हो और जिन्होंने अपनी मां के दूध का मोल चुकाने के बारे में कभी सोचा हो वे आज कमर कस कर सर पर कफन बांध तैयार हो जायें और अधर्म-पाप-अज्ञान पर इतने जोरों से हमला करें कि दुनिया के किसी भी कोने में उन्हें शरण भी न मिल सके।

अकेले चलना और अकेले लड़ना बहुत मुश्किल काम होता है, पर अभी तो हम लड़ रहे हैं। और जिन्दगी की आखरी सांस तक लड़ते रहेंगे, पर एक इच्छा है कि एक सेना खड़ी हो जाए जो कम से कम भारत की पवित्र भूमि को तो पवित्र बना दे।

**इन पंक्तियों को पढ़ने वालों में से कौन तैयार है**
**हमारा साथ देने को और हिमालय से टकराने को।**

भारतेन्द्रनाथ-महात्मा वेदभिक्षु :
(नवम्बर १९७३ जनज्ञान से उद्धृत)

# आप ही के पत्र

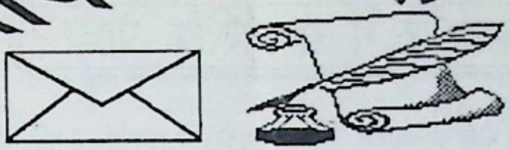

### शिक्षामहत्व

आदरणीया बहन जी,

जनज्ञान में प्रकाशित लेख "अथवेदोपस्थानमः शिखा" पढ़ा। लेख में शिखा के माध्यम से, उससे सूचित होने वाले स्थान "ज्ञानात्मक मस्तिष्क भाग" से जो सम्बन्ध स्थापित किया है अत्यन्त महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक सत्य है। शिखा के माध्यम से जो वैज्ञानिक सत्य ऋषि परम्परा से स्थापित किया गया है, सम्भवतः अन्य किसी धर्म में ऐसा सम्बन्ध या ऐसा ज्ञान कहीं भी नहीं दृष्टिगोचर होता है।

शिखा तो यह सूचना दे रही है कि वैदिक-काल में मस्तिष्क की संरचना का सूक्ष्म ज्ञान ऋषियों को था और इस ज्ञान की महत्ता को निरन्तर प्रदान करने के लिए शिखा की स्थापना की गई थी।

### अफगानिस्तान का हिन्दू

आदरणीय बहिन जी,

आप ने अपने सशक्त सम्पादकीय में अफगानिस्तान में भारतीयों की बहुत ही शर्मनाक दुर्दशा की ओर ठीक ही ध्यान दिलाता है। पर क्या यह सरकार कुछ प्रभाव शाली कदम उठा सकेगी मुझे बहुत सन्देह है।

सरकार तो हमारे देश के मूल निवासियों की दुर्घटना से किसी देश से भी ठीक से नहीं निपट सकी।

पाकिस्तान और बंगलादेश में हमारे स्वजनों की दुर्दशा सब को मालूम है पर हमारी सरकार यथायोग्य कार्यवाही करने में असमर्थ है। दूसरे देश अपने लोगों के दूसरे देशों में या तो खुद प्रभावी कदम उठाते हैं या फिर उन के पक्ष में संसार का जनमत तैयार कर लेते हैं। पर हमारी सरकार प्रभावी कदम उठाने में लाचार नजर आंती। भला उस सरकार से क्या आशा की जा सकती कि जो अपने देश में कश्मीर और पंजाब से भी हिन्दुओं को शरणार्थी होने देती है लोग कब तक यह सब सहन करते रहेंगे।

-हरवंश सिंह मेजा अवकाश प्राप्त मेरठ

### शुभकामनाएं

आदरणीय बहिन जी

रक्षा बन्धन के पावन पर्व पर आपकी स्नेहमयी राखी प्राप्त हुई। मन को बहुत प्रसन्नता हुई। हम सर्वान्तर्यामी प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं। कि संस्थान पर आसुरी शक्तियों द्वारा जो मुकदमें चल रहे हैं। वे शीघ्र ही समाप्त हो जायं तथा आसुरी शक्तियों का विनाश हो। तथा सम्पूर्ण विश्व में फिर से वेद की ऋचायें गूंज उठें।

आपका भाई

राजेन्द्र कुमार गाजियाबाद

### बांग्ला देशी घुसपैटिए

सम्पादिका जी

प्रायः सभी राजनीतिक दल विशेषतः शासक लोग देश में निरन्तर बढती जा रही जनसंख्या के प्रति घोर चिन्ता प्रकट करते हुए उसको कम करने के उपायों पर करोड़ों रूपया खर्च कर रहे, हैं, तो दूसरी ओर विदेशी घुसपैठियें विशेषतः बांग्लादेश से आने वाले मुस्लिम समुदाय के लोगों को यहां प्रायः समूचे देश में बसाया ही नहीं जा रहा है, अपितु उनके नाम मतदाता सूचियों में दाखिल कराके उनको यहां की नागरिकता भी प्रदान की जा रही है। इसका मुख्य उद्देश्य उक्त समुदाय के लोगों को अपनी वोट बैंक मानकर चुनावों के दौरान अपने पक्ष में उनका मत प्राप्त करना है।

यों तो यह सिलसिला कई वर्ष पहले से ही चलता आ रहा है, जबकि असम, त्रिपुरा, नागालैंड़ मेघालय आदि उत्तर पूर्व के राज्यों में उनकी घुसपैट होती रही थी और उस समय उन राज्यों के शासकों तथा जनता द्वारा भी इसका विरोध करते हुए केन्द्र सरकार से उनके रोकने के लिए निरन्तर आग्रह भी किया जाता रहा था। उक्त घुसपैठ के विरोध में असम में तो बड़ा आंदोलन भी हुआ था। सीमा पर कांटेदार तार लगाने का भी लगातार अनुरोध करते रहे थे, परन्तु अपने दल के लिए वोट प्राप्त करने के लालच में केन्द्र की कांग्रेस सरकार ने उसे ओर ध्यान नहीं दिया।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

# क़श्मीर में राजनीतिक पहल

कश्मीर की आंतरिक स्थिति का मौके पर जायजा लेने के लिए सर्वदलीय संसदीय प्रतिनिधिमंडल श्रीनगर की तीन दिन की यात्रा पर है। जम्मू-कश्मीर में चुनाव कराने की सरकार की वचनबद्धता के तहत हाल ही में गृहमंत्री शंकरराव चव्हाण ने विभिन्न दलों के नेताओं के साथ विचार-विमर्श किया था, जिसमें उन्होंने कश्मीर चुनाव के बारे में आम सहमति के आधार खोजने का प्रयत्न किया था। संसदीय दल की वर्तमान श्रीनगर यात्रा को पिछले विचार-विमर्श की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। अन्य बातों के अलावा कश्मीर में चुनाव कराना एक संवैधानिक मजबूरी भी बन गयी है। कश्मीर में वर्तमान राष्ट्रपति शासन की अवधि तीन मार्च को समाप्त हो रही है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार उस समय तक कश्मीर में विधानसभा चुनाव कराना जरूरी है अन्यथा वहां पर आगे राष्ट्रपति शासन जारी रखने के लिए संविधान में संशोधन करना जरूरी होगा। सत्तारूढ़ कांग्रेस को इसके लिए दो तिहाई बहुमत की जरूरत होगी, जो उसके पास उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में कश्मीर के मामले पर सरकार आम सहमति विकसित करने के इरादे से आगे बढ़ रही है। वास्तव में कश्मीर चुनाव में तीन प्रमुख बाधाएं हैं। पहली, पाक समर्थित उग्रवादियों के आतंक के बावजूद क्या राज्य में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना संभव है। दूसरी आतंकवाद से पीड़ित गैर-मुस्लिम आबादी जो दिल्ली और जम्मू में शरणार्थी के रूप में रह रही है, क्या चुनाव के समय अपने घर वापस लौट सकेगी। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या आतंकवाद से बिखरे राजनीतिक दलों का ढांचा और उनकी विश्वसनीयता इतनी है कि वे राज्य में भरोसे की वैकल्पिक सरकार प्रदान करने की स्थिति में हैं। ये तीनों ऐसी पेचीदगीपूर्ण सवाल हैं।, जिनका उत्तर विधानसभा चुनाव के सिलसिले में खोजना जरूरी होगा। इनका समाधान निकाले बिना चुनावों की सार्थकता सन्देहास्पद बन जाएगी।

आतंकवाद के परिणामस्वरूप घाटी में राजनीतिक दलों का ताना बाना बिखर गया है। भय और आतंक के माहौल में राजनीतिक गतिविधियां ठप हैं। विभिन्न दलों के जाने-माने नेता और कार्यकर्ता घाटी से बाहर हैं। जम्मू-कश्मीर की एक मात्र क्षेत्रीय पार्टी नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस मूर्छित अवस्था में हैं। पूर्व मुख्यमंत्री डा० फारूख अब्दुल्ला घाटी छोड़कर सपरिवार लंदन में आबाद हैं। डा० फारूख अब्दुल्ला जिन्हें शेख अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद कश्मीर की सत्ता विरासत में मिली थी आज बदले हुए नजर आ रहे हैं। अपने पिता शेख अब्दुल्ला के समान ही वे कश्मीर के भारत में विलय के समर्थक रहे हैं। परन्तु लगता है कि वे आतं. कवादी भय से ग्रस्त हैं और वे कश्मीर के स्वतंत्र अस्तित्व की बात करते हैं। इस स्थिति में डा० अब्दुल्ला राज्य में नये राजनीतिक समीकरणों की तलाश में हैं। इन परिस्थितियों में चुनाव के बाद कश्मीर में किस प्रकार की सरकार आ सकती है इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। इससे केन्द्र के लिए नयी समस्याएं भी पैदा हो सकती हैं।

## बेटों का राजतिलक

पिता द्वारा पुत्र को सत्ता राजनीतिक विरासत के रूप में सौंपना सामन्तीयुग की देन है। पुत्र कैसा भी हो, राज का वही जायज अधिकारी होता था, परन्तु देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था लागू होने के बाद आज भी सामन्ती युग की झलक मिलती है, जब एक के बाद एक मुख्यमंत्री अपने चहेते बेटों को परोक्ष ढंग से सत्ता की बागडोर सौंपने की निर्लज्ज कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं। यह सामन्ती प्रवृति विपक्षी दलों के बजाय स्वतंत्रता संग्राम की पुरोधा पार्टी कांग्रेस में अधिक झलकती है। हरियाणा के मुख्यमंत्री चाहे भजनलाल हों या धुर दक्षिण के केरल के मुख्य मंत्री करूणाकरण दोनों एक ही मर्ज के मरीज हैं। कि उनके बाद उनके पुत्रों को राज्य की सत्ता विरासत के रूप में कैसे सौंपी जा सकती है। इन्होंने अपने पुत्रों के परोक्ष राजतिलक का तरीका भी निकाल लिया है, जब भी वे कहीं विदेश यात्रा पर जाते हैं तो उनके पुत्र पिता की सत्ता की खड़ाऊं को सामने रखकर सरकारी कामकाज चलाने की कोशिश करते हैं।

हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल अगले महीने करीब दो सप्ताह की विदेश यात्रा पर जा रहे हैं। इस आशय की घोषणा पार्टी के एक समारोह में करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पुत्र चन्द्रमोहन सहयोगी मंत्रियों के साथ सरकारी कामकाज की देखभाल करेंगे। उनकी अनुपस्थिति में अपनी समस्याओं के निदान के लिए लोग इनसे सम्पर्क कर सकते हैं। पुत्र चन्द्रमोहन न तो विधायक हैं, न ही अभी तक उनकी कोई राजनीतिक हैसियत है। वे हरियाणा युवक कांग्रेस के मात्र महासचिव हैं।, परन्तु उनका सरकार के कामकाज में अच्छा-खासा दखल है और वे मुख्यमंत्री की ओर से मंत्रियों एवं नौकरशाही को निर्देश जारी करते रहते हैं। पुत्र की इस असंवैधानिक सत्ता के प्रति लोगों की भौहें तो तनती हैं, लेकिन सत्ता के लालच में फंसे लोगों का इस प्रवृति के खिलाफ साहस बटोरना कठिन काम हो गया है।

ऐसी ही कुछ स्थिति केरल में पनप रही है, जहां पर दुर्घटनाग्रस्त मुख्यमंत्री करूणाकरण अपने बेटे मुरलीधरन को अपनी राजनीतिक विरासत सौंपने की तैयारी में जुटे हैं। हरियाणा के विपरीत केरल के मुख्यमंत्री के पुत्रमोह के खिलाफ पार्टी के ही अन्दर विवाद उत्पन्न होने लगा है। कुर्सी की तैयारी में पिता की बीमार अवस्था में पुत्र को राज्य कांग्रेस का महासचिव बनाया गया। पर्दे के पीछे उन्हें मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठाने की कोशिश हो रही है। ये दोनों ही घटनायें लोकतांत्रिक मर्यादाओं के लिए अपशकुन के रूप में देखी जानी चाहिए। लोकतंत्र की मूल अवधारणा परिवारवाद और वंशवाद को नकारती है, लेकिन जब देश संसदीय लोकतंत्र परीक्षण के दौर से गुजर रहा है, उस समय भौंडे ढंग से परिवार के लिए सत्ता हथियाने के शर्मनाक प्रयास लोकतंत्र की जड़ों में मट्ठा डालने के समान हैं, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि कांग्रेस में ऊपर से लेकर नीचे तक सभी इसी काम में व्यस्त हैं। तो सवाल उठता है कि कौन किसको मर्यादा का पाठ पढ़ाये और कौन किसको रोकने का काम करे। अंततः इसकी जिम्मेवारी जनता पर आती है, जिसें उसे देर-सँवेर से निभाना होगा। (राष्ट्रीय सहारा २८ अक्टूबर)

(पृष्ठ ५ का शेष)

अब स्थिति यह हो गई है कि सीमावर्ती राज्यों को छोड़कर अब उक्त घुसपैठिये राजधानी दिल्ली में लाखों की तादाद में आकर झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हुए राशनकार्ड प्राप्त कर रहे हैं और अब दिल्ली का शासन उनकी बिना पहचान कराये वहां की मतदाता सूची में नाम दर्ज कराने के आदेश संबंधित अधिकारियों को दे रहा है।

आश्चर्य इस बात का है कि भाजपा को छोड़कर कोई भी राजनीतिक दल इसका विरोध नहीं कर रहा। हाल में भोपाल में आयोजित भारतीय जनता पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक में बांग्लादेश से हो रही घुसपैठ को लेकर उसके विरोध में आक्रामक तैवर अपनाया है और यह आरोप लगाया है कि बांग्लादेशी मुस्लिमों की घुसपैठ ने पूर्वी भारत और उत्तर पूर्व के लगभग सभी राज्यों में भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है। उन्होंने सीमावर्ती क्षेत्र की भूमि हथिया ली है और उनमें से लाखों लोग दिल्ली, बम्बई, बैंगलौर, कानपुर, पटना, इलाहाबाद तथा मेरठ भी आ बसे हैं और उन सबको वोट का अधिकार देकर यहां का नागरिक बनाया जा रहा है। इससे देश की रक्षा और स्थिरता को जो खतरा उत्पन्न होगा, उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। -युगला किशेर चतुर्वेदी

**सत्य और इतिहास**

आदरणीया,

अंग्रेज राजनीति के इस सूत्र से पूर्णतया अभिज्ञ थे, कि जिस राष्ट्र या समाज को चिरस्थायी दास बनाये रखना हो उस राष्ट्र या समाज की संस्कृति और इतिहास को नष्ट कर देना चाहिये। जिससे वहां के निवासी अपनी संस्कृति तथा अपने पूर्वजों के इतिहास से जीवनी शक्ति लेकर अपने विलुप्त आत्मसम्मान को प्राप्त करने के लिए हमारे विरूद्ध खड़े न हो उठें। इसीलिए उसने भारत का भौगोलिक राज्य प्राप्त करने पर सर्वप्रथम भारतीय इतिहास को विकृत करने का षड़यन्त्र चलाया, जिस षड़यन्त्र के लक्ष्य भारत के अनेक विद्वान तथा राजनीतिज्ञ हुए। गाँधी जी तथा जवाहर लाल नेहरू जैसे राजनेता भी जो अंग्रेजों भारत छोड़ों का आन्दोलन चलाने वाले थे, उनके उस षड़यन्त्र की पकड़ से बाहर नहीं जा सके। उनके प्रभाव में आकर जहाँ गाँधी जी ने हरिश्चन्द्र जैसे प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट के ऐतिहासिक होने पर सन्देह व्यक्त किया, वहीं नेहरू ने आर्यों को भारत के बाहर का आक्रान्ता बताकर अंग्रेजों की दुर्नीति को ही पुष्ट किया। स्वतन्त्र भारत में आज उनके मानस पुत्रों का तो कहना ही क्या? जो रामायण तथा महाभारत के महायुद्धों को भी असत्य एवं किसी कबीले पर दो भाईयों की सामान्य कलह कहकर श्री राम जैसे मर्यादा पुरूषोत्तम की ऐतिहासिकता को ही स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं।

अंग्रेजों की चाल में यह भी एक बात थी, कि आर्य लोग यज्ञ के अवसर पर सोम नाम की शराब (सुरा) एवं सुरा के गुणों का स्पष्ट भेद लिखा पाया जाता है। स्वामी दयानन्द ने उनके इस षड़यन्त्र को समझा तथा उसके विरूद्ध उद्घोष किया, उनके परवर्ती अनेकों आर्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा तथा कहा। स्वामी समर्पणानन्द जी का तो मुख्य विषय ही यही रहा और वे आजीवन पाश्चात्य तथा उनके अनुवर्ती विद्वानों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे। हर्ष का विषय है कि उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार ने आर्यों को सोम नामक तथाकथित सुरापान से बचाया, जो कि मैकाले की शिष्य मंडली के द्वारा आर्यों को सैकड़ों वर्षों से पिलायी जाती थी। अब इतिहास की छठी कक्षा की पुस्तक में आर्य लोग सोम नाम की औषध का रसपान यज्ञ के अवसर पर करते थे का स्पष्ट उल्लेख कर छात्रों के सम्मुख अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया। इसके साथ ही वर्तमान उत्तर प्रदेश सरकार ने भारतीय विद्वानों का यह पक्ष कि आर्य लोगों का मूल निवास स्थान भारतवर्ष ही है यह पढ़ने के लिए दिया। कम से कम अब भारतीय विद्वानों के पक्ष को भी तो छात्र पढ़ सकेंगे। इसके लिए हम उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार को साधुवाद देते हैं। - स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती

~~गुरुकुल भोला झाल~~

# वेद अपौरुषेय और अपरिवर्तनीय है

- डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर

**अन्य साधारण ग्रन्थों के समान वेद भी ग्रन्थ रूप ही होने के कारण, पौरूषेय अर्थात् मनुष्य निर्मित ही होने चाहिए, यह सामान्य तर्क सर्वत्र रूढ़ है। भाष्यकार कहते हैं-अतीन्द्रीय विषयों पर सहस्रावधि शाखाओं का इतना महान ग्रन्थ-राशि व्यक्त करना, हम जैसे मानवों का काम नहीं है। अर्थात् वह ईश्वर का ही काम हो सकता है।**

**वेद-मंत्रों के अक्षरों का परम्परागत जो क्रम है, वह सर्वथा अपरिवर्तनीय है। उसके एक भी अक्षर, वर्ण या मात्रा में भी लेशमात्र परिवर्तन करने पर वह मंत्र 'वैदिक' नहीं रहेगा। 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इस मन्त्र का "इले अग्निं पुरोहितम्" इस प्रकार पाठान्तर करने से अर्थहानि भले न हो, परन्तु उस मंत्र के वैदिकत्व ही हानि अवश्य होती है।**

**सांख्यदर्शनकार कहते हैं कि वेद पौरूषेय हो ही नहीं सकते, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में, ऐसा कोई पुरुष अस्तित्व में ही नहीं था जो वेदों की रचना कर सके।**

वेदों की रचना का कालनिर्णय करने का प्रयास करने वाले आधुनिक अभारतीय तथा भारतीय विद्वानों ने अपने भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन करते हुए एक ने दूसरे का खडंन किया है। इस परस्पर विवाद के कारण इस विषय में प्रतिपादित मतों में से कोई भी एक विशिष्ट मत प्रतिष्ठित नहीं हुआ है। प्रायः भारतीयों को वेदों की प्राचीनता प्रतिपादित करने वाला मत ग्राह्य लगता है और अभारतीय लोगों को उसकी अर्वाचीनता प्रतिपादन करने वाला मत उपादेय लगता है। वेदकाल विषयक आधुनिक विवाद में, वेदों के प्रति नितान्त श्रद्धा अन्तःकरण करने वाले परम्परावादी भारतीय विद्वानों के युक्तिवादों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। वैदिक धर्म संकल्पना का परिचय होने के लिए उन प्राचीन युक्तिवादों का ठीक आकलन विशेष महत्व रखता है।

**कालनिर्धारण असम्भव**

प्राचीन भारतीय विद्वानों के मतानुसार वेदनिर्मिति के काल का निर्णय करना असम्भव माना गया है। संसार से सभी इतिहासज्ञों का इस बात में मतैक्य है कि वेद ही संसार का आज उपलब्ध होने वाला सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ज्ञानराशि है। परन्तु उसका काल वे निर्धारित नहीं कर सके। ईसा पूर्व १००० से ७५००० वर्षों तक अन्यान्य शताब्दियों में वेदों की निर्मिति मानने में कोई स्वारस्य नहीं। इन अन्वेषकों का अध्ययन और चिन्तन अभिनन्दनीय है। परन्तु उनके निष्कर्ष स्वीकार योग्य नहीं हैं।

इस विषय में प्राचीन परम्परावादी भारतीयों की जो धारणा है उसका सारांश इस प्रकार कहा जा सकता है--

(१) वेद नित्य है और सृष्टि के प्रारम्भ से ही वेदों का आविर्भाव हुआ होगा। जिस परमात्मा ने सृष्टि की निर्मिति की, उसी परमात्मा ने उसके पहले वेद निर्माण किए होंगे। जैसे कुम्हार जब घट की निर्मिति करता है तो उसके पहले अपनी बुद्धि में उसकी निर्मिति कर, तदनुसार मिट्टी को आकार देता है। कोई भी कार्य किसी कर्त्ता के बिना नहीं हो सकता। यह ब्रह्माण्ड भी एक कार्य ही है, अतः तर्कानुसार उसे भी किसी कर्त्ता का अस्तित्व मानना ही चाहिए। प्रत्येक कर्त्ता अपना कार्य, अपनी बुद्धि में अलिखित करने के बाद ही उसे साकार करता है। इस निरपवाद सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड रूपी कार्य का आलेख, उसके कर्त्ता की बुद्धि में प्रथम निर्माण होना चाहिए। इस युक्तिवाद के अनुसार परम्पराओं की यह धारणा है कि, सृष्टि के विधाता ने जिस आलेख अथवा जिस विचार की सर्वप्रथम कल्पना अपनी बुद्धि में की, वही "आम्नाय" यानी वेद है। सामान्य तर्क के अनुसार ब्रह्माण्डरूपी कार्य के कर्त्ता को (कार्यनिर्मिति के पहले) स्फूर्त होना आवश्यक है।

इस तथ्य को मान्यता देने पर भी यह शंका उपस्थित होती है कि, सृष्टि निर्माता की वह स्फूर्ति वेदस्वरूप ही थी, इस बात को मान्य करने वाला प्रमाण नहीं है। वेदों को ही पर ब्रह्म परमात्मा का आद्य विचार क्यों माने?

### परमश्रेष्ठ आप्तवाक्य

इस शंका का उत्तर प्रत्यक्ष और अनुमानतः इन प्रमाणों द्वारा देना असंभव होने के कारण आप्तवाक्यरूपी प्रमाण के द्वारा देना आवश्यक होता है। वैदिकों की धारणा के अनुसार वेद ही परमश्रेष्ठ आप्तवाक्य है। इस विषय में वेदों के वचन इस प्रकार हैं:--

१ यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा
तां सप्तरेभा अभिसन्नवन्ते।।
(ऋ १०/७१/३)

२ बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत् प्रैरयत् नामधेयं दधानाः ।
येदषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्
प्रेम्णा तदेषां निहित। गृहाविः।।
(ऋ १०/७१/१)

३ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः
ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मादजायत ।।
(ऋ १०/९०/९)

४ तस्मादृचोऽपातक्षन्
यजुस्तस्मादपाकयन्।
सामानि यस्य लोमानि
अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।।
(ऋ १०/७/२०)

इन वेद वचनों में यज्ञ (अर्थात् यजनीय, पूजनीय ईश्वर परमात्मा) से ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेदों की उत्पत्ति स्पष्ट शब्दों में कही है। अतीन्द्री विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आप्तवाक्य का ही प्रमाण क्यों मानना चाहिए, यह स्वतंत्र चर्चा का विषय है। आप्तवाक्य का प्रामाण्य मानने वाले प्राचीन आचार्यों ने इस सम्बंध में मार्मिक युक्तिवाद प्रस्तुत किए हैं। श्रेष्ठ दार्शनिकों द्वारा अंगीकृत "आप्तवाक्य" के आधार पर, वेदों का जनिता परमात्मा ही है, यह मत वैदिकों ने मान्य किया है। उसी मान्यता के साथ आनुषंगिकतया यह भी मानना पड़ता है कि सर्वज्ञ और निर्दोष परमेश्वर ही अगर वेदों का जनक होगा, तो उसके वेद भी सर्वज्ञानमय और निर्दोष ही होने चाहिएं। जगद्गुरू श्रीशंकराचार्य ने वेदों का सर्वज्ञानमयत्व मानते हुए यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया है कि--

**'महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य अनेक विद्या स्थानो पबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। न हि ईदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः संभवः अस्ति।' (ब्रह्मसूत्र शां. भा. १-१-३)**

अर्थात् ऋग्वेदादि महान् शास्त्र अनेक विद्यास्थानों से (४ वेद, ६ शास्त्र, धर्मशास्त्र, पूर्वोत्तर मीमांसा और तर्कशास्त्र इन चौदह विद्याओं को "विद्यास्थान" कहते हैं) विकसित हुआ है और वह प्रदीपवत् सारे विषयों को प्रकाशित करता है इस प्रकार के सर्वज्ञानसंपन्न शास्त्र का (अर्थात् वेदों का) उत्पत्तिस्थान ब्रह्म ही हो सकता है, क्योंकि सर्वज्ञ परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्ति और किसी से ऋग्वेदादि सर्वज्ञान सम्पन्न शास्त्र की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

### वेदों का जनक ईश्वर

सर्वज्ञ ईश्वर ही वेदों का जनक होने के कारण, उसका वेदरूप कार्य भी सर्वज्ञानपूर्ण होना चाहिए। इस अनुमान मात्र से भी जगद्गुरू शंकराचार्य का युक्तिवाद अधिक वेदनिष्ठापूर्ण है। वे कार्यरूप वेदों का सर्वज्ञानमयत्व सिद्धवत् मानकर उसके कारण की सर्वज्ञानमयत्व का तर्क प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् इस तर्क के अनुसार परब्रह्म परमात्मा सर्वज्ञानमय होने के कारण, वही वेदों का जनक या निर्माता माना जा सकता है।

श्रीशंकराचार्य जी ने वेदों का ईश्वर-कर्तृत्व सिद्ध करते हुए वेदों के विषय में **"विद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थाविद्यौतिनः सर्वज्ञकल्पस्य"** इत्यादि जो विशेषण प्रयुक्त किए हैं, उनमें यत्किंचित भी अतिशयोक्ति का अंश नहीं है। इसका पहला कारण श्रीशंकराचार्य जैसे विश्ववंद्य परमज्ञानी महापुरूष ने उन विशेषणों का प्रयोग किया है और दूसरा

कारण यह है कि, अतिप्राचीन काल से आज तक के प्रदीर्घ कालावधि में विविध प्रकारों से जो वेदों का मंथन और चिन्तन हुआ, उससे भी उन विशेषज्ञों की यथार्थता सिद्ध हुई है।

जगद्गुरू श्रीशंकराचार्य की वेदों की "सर्वज्ञानमयता" पर इतनी प्रगाढ़श्रद्धा है कि अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में, "पांचरात्र नामक मत" का खंडन करते हुए, उन्होंने यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया है कि, 'शांडिल्य को 'चारों वेदों मे निःश्रेयस का मार्ग न दिखने के कारण' उसने इस शास्त्र (पांचरात्र-दर्शन) का ज्ञान प्राप्त किया, इस प्रकार के पांचरात्र दर्शन के स्तुतिवाक्यों में से वेदों की निन्दा ध्वनित होती है, अतः वह दर्शन भी अग्राह्य मानना चाहिए। **(विप्रतिषेधाच्च भवति। चतुर्षु वेदेषु पर श्रये ः अलब्ध्वा शाण्डिल्यः इदं शास्त्रम् अधिगतवान् इत्यादि वेदनिन्दादर्शनात्)।**

भगवान् व्यास ने भी 'विप्रतिषेधाच्च' (२-२-४५) इस ब्रह्मसूत्र के द्वारा यही मत सूचित किया है। इस प्रकार वेदों का ईश्वरकर्तृत्व उपपत्ति और उपलब्धि (अनुमान और आप्तवाक्य) इन प्रमाणों के आधार पर सिद्ध मानते हुए, अर्वाचीन (पाश्चात्य और पौरस्त्य) पंडितों ने अथवा प्राचीन वेद विरोधी नास्तिक पण्डितो ने माना हुआ वेदों का पौरूषेयत्व याने पुरूषकर्तृत्व वैदिकों की परम्परा में अप्रमाण माना गया है।

### वेदों का नित्यत्व

परंपरावादियों ने शिरोधार्य माना हुआ वेदों का नित्यत्व तथा अपौरूषेयत्व का सिद्धान्त विविध 'आस्तिक' दर्शनों के आचार्यों ने अन्यान्य युक्तिवादों से प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है-- भगवान जैमिनि जी ने अपने पूर्व मीमांसा दर्शन में इस विषय की चर्चा की हैं। **"कर्मेके तत्र दर्शनात्"** इस सूत्र से आगे १२ सूत्रों में वेदों का अनित्यत्व प्रतिपादन करने वाले पूर्वपक्ष के तर्क सविस्तार देकर, आगे **"नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात्"** (१-१-६) इत्यादि छह सूत्रों द्वारा अनित्यवादी पक्ष के तर्कों का खंडन करते हुए, वेदों का नित्यत्व बड़ी मार्मिकता से प्रतिपादन किया है।

उत्तरमीमांसा दर्शन में भगवान बादरायण व्यास जी ने **"शास्त्रयोनित्वात्"** इस सूत्र के द्वारा वेदों का उद्गम परब्रह्म से ही हुआ है, इस सिद्धान्त को स्थापित कर, यह निष्कर्ष बताया है कि, परमात्मा नित्य होने के कारण उसका ज्ञान यानी वेद भी, नित्य ही होने चाहिए।

वैशेषिक दर्शन में वेदों का अपौरूषेयत्व और स्वतः प्रामाण्य **"तद्वचनात् आम्नायस्य प्रामाण्यम्"** इस सूत्र द्वारा प्रतिपादन किया है। इस सूत्र का विवरण करते हुए उपस्कारभाष्य में कहा है कि सूत्रस्थ 'तत्' शब्द ईश्वर बोधक है, क्योंकि ईश्वर ही वेदों का जनक है यह बात सुप्रसिद्ध और सिद्ध है। (तद् इति अनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धि-सिद्धतय ईश्वर परामृशति।" **(-वैशेषिक सूत्र उपस्कार** भाष्य) इसी सूत्र का दूसरे प्रकार से अर्थ निकाल कर, वेदों का प्रामाण्य सिद्ध किया गया है। जैसे - 'सूत्रस्थ' तत् शब्द, समीपस्थ धर्म यह अर्थ बताता है। अतः धर्म का प्रतिपादन करने के कारण, वेद को प्रामाण्य प्राप्त हुआ है। जो वाक्य प्रामाणिक प्रमाणसिद्ध अर्थ का प्रतिपादन करता है वह (वाक्य) प्रमाणभूत ही होता है। **(यद् वा तत् इति सन्निहितं धर्ममेव परामृशति। तथा च धर्मस्य वचनात्प्रतिपादनात् वेदस्य प्रामाण्यम् । तत् प्रमाणम् [illegible] तः इत्यर्थः (उपस्कारभाष्य)।**

अन्य [illegible], ग्रन्थों के समान वेद भी ग्रन्थ रूप ही होने के कारण, पौरूषेय अर्थात् मनुष्य निर्मित ही होने चाहिएं, यह सामान्य तर्क सर्वत्र रूढ है। भाष्यकार कहते हैं-अतीन्द्रीय विषयों पर सहस्त्रावधि शाखाओं का इतना महान् ग्रन्थ-राशि व्यक्त करना, हम जैसे मानवों का काम नहीं है। अर्थात् वह ईश्वर का ही काम हो सकता है। **(वेदस्तावत् पौरूषेयः वाक्यत्वात् इति साधितम्। न च अस्मददायः तेषां सहस्रशाखाच्छिन्नानां वक्तारः सम्भाव्यन्ते अतीन्द्रियार्थत्वात्। न च अतीन्द्रियार्थदर्शिन ः अस्मदादयः)।**

### दार्शनिकों के मत

वैशेषिक दार्शनिकों ने वेदों का अपौरूषेयत्व प्रतिपादन करने के लिए अनेकविध तर्क प्रस्तुत किए हैं। उसके कुछ उदाहरण मात्र यहां प्रस्तुत हैं। न्यायदर्शनकार गौतममुनि **"मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवत् च तत्प्रामाण्यम् आप्तप्रामाण्यात्"**, इस सूत्र के भाष्य में कहते हैं "वेदों के अर्थ के जो द्रष्टा एवं प्रवक्ता हैं, वे ही आयुर्वेदादि के प्रवक्ता है। अतः आयुर्वेदादि शास्त्रों को हम जैसे प्रमाणभूत मानते हैं, वैसे ही वेदों को भी प्रमाण मानना चाहिए। **(ये एव आप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते एव आयुर्वेद प्रभृतीनाम् इति आयुर्वेद-प्रामाण्यवत् वेद प्रामाण्ययम् अनुमातव्यम्।)**

सांख्य दर्शन के प्रवर्तक भगवान कपिल ऋषि वेदों

के नित्यत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं, 'शब्द और अर्थ का सम्बंध नित्य है, इसलिए वेदरूप शब्दराशि नित्य ही होना चाहिए।' इस विधान पर आक्षेपक कहते हैं, **'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे'**। इस वेदवचन के अनुसार वेद यजनीय (यज्ञ) ईश्वर से उत्पन्न हुए। इस कारण वे नित्य नहीं हो सकते, क्योंकि उत्पन्न होने वाला प्रत्येक पदार्थ घटपटादि के समान अनित्य ही होता है-- **(न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः (सांख्यसूत्र- ४-४५)**।

इस युक्तिवाद में वेदों के नित्यत्व का खंडन करने वाले ने भी वेदों का ईश्वर कर्तृव्य मान्य किया है।

वेद अगर घटपटादि पदार्थों के समान उत्पन्न हुए हैं, तो उनका अपौरूषेयत्व अर्थात् ईश्वरकर्तृत्व क्यों माना जाए? यह भी प्रश्न उपस्थित किया गया। उसका समाधान करते हुए सांख्यदर्शनकार कहते हैं कि वेद पौरूषेय हो ही नहीं सकते, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में, ऐसा कोई पुरूष अस्तित्व में ही नहीं था जो वेदों की रचना कर सके-- (न **पौरूषेयत्वं, तत्कर्तुः**) वेदों के पौरूषेयत्व का खंडन करते हुए, 'सृष्टिनिर्मिति अवसर पर परमात्मा की स्वाभाविक शक्ति से वेदों का प्रादुर्भाव होता है अतः वे 'स्वतःप्रमाण' हैं-- **(नित्यशक्त्याभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्)** इस युक्तिवाद से वेदों का अपौरूषेयत्व सांख्य दर्शन में प्रतिपादित किया हुआ है।

### असंख्यविवाद

इस प्रकार बुद्धकाल के पूर्व काल में ही वेदों का अपौरूषेयत्व, नित्यत्व, स्वतः प्रामाण्य इत्यादि विषयों पर बड़े मार्मिक विवाद चलते आए हैं। सभी आस्तिक दर्शनकारों ने अपने सूत्रों तथा भाष्यों द्वारा, वेदविरोधी युक्तिवादों का खंडन करते हुए, अपनी अद्भुत विचार शक्ति का परिचय दिया है। उन सिद्धान्तों का, दार्शनिकों के मार्मिक युक्तिवादों का ठीक, आकलन किए बिना, प्राचीन भारतीयों का वेदविषयक दृष्टिकोण ध्यान में आना सम्भव नहीं है। अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में दार्शनिक विद्वानों ने जो अद्भुत बुद्धिकौशल्य व्यक्त किया है, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा अभारतीय विद्वानों ने भी की है। इस सम्बंध में प्रसिद्ध यूरोपीय पंडित मयूर कहते हैं इन दार्शनिकों के वाद-विवाद जो पढ़ता है उसे उनके युक्तिवाद की तीक्ष्णता, तर्कों की निर्दोषता और प्रासंगिक उचित दृष्टान्तों की मौलिकता तथा सजीवता, इनकी ठीक कल्पना आए बिना नहीं रहती।

### अपरिवर्तनीय वेद

वेदों का अपौरूषेयत्व, नित्यत्व एवं स्वतः प्रामाण्य, इन सिद्धान्तों से प्रस्थापित करने वाले परम्परावादी वैदिक पंडितों का और एक आग्रह है कि, वेद-मंत्रों के अक्षरों का परम्परागत जो क्रम है, वह सर्वथा अपरिवर्तनीय है। उसके एक भी अक्षर, वर्ण या मात्रा में भी लेशमात्र परिवर्तन करने पर वह मंत्र 'वैदिक' नहीं रहेगा। 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इस मंत्र का 'इळे अग्निं पुरोहितम्' इस प्रकार पाठान्तर करने से अर्थहानि भले न हो, परन्तु उस मंत्र के वैदिकत्व की हानि अवश्य होती है। वैदिक वाक्यों और अवैदिक वाक्यों में यही महत्वपूर्ण भेद है 'पात्रम् आहर' इस लौकिक वाक्य की रचना 'आहर पात्रम्' इस प्रकार उल्टी करने पर भी कोई दोष नहीं माना जाता। परन्तु वैदिक वाक्य में इस प्रकार से परिवर्तन करने से उसमें मंत्रत्व नहीं रहता इसका कारण यह माना गया है कि, वेद नित्य होने के कारण, उनके शब्दों का क्रम प्रत्येक कल्प में एक रूप ही रहता है प्राचीन कल्पों का विशिष्ट क्रम का शब्दराशि, कल्पान्तरों के पश्चात् मंत्र द्रष्टा के हृदय में उसी अनुक्रम से प्रकट होता है। नए कल्पों के ऋषि नूतन वेदों का निर्माण नहीं करते। वास्तव में ऋषि वेदमंत्रों के कर्त्ता या निर्माता होते ही नहीं। इसी कारण वेदों का अपौरूषेयत्व सम्प्रदायानुसार माना गया है। इस प्रकार वेदों का अपौरूषेयत्व मान्य करने पर, भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा (वंचना करने की इच्छा) इत्यादि पुरूषकृत दोषों की वेदों में कल्पना भी करना अयोग्य होता है। इसी सर्वकष निर्दोषता के कारण वेदवाक्यों को आप्तवचनरूप निरपवाद प्रामाण्य साम्प्रदायिकों द्वारा दिया गया है।

साम्प्रदायिकों का वेदों के विषय में और भी एक सिद्धान्त है, उतना बताकर इस विषय को विराम देंगे।

**'अग्निमीळे पुरोहितम्। यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।'** इस आद्य वेद मंत्र में भाषा के प्रमुख स्वरों और व्यंजनों का अन्तर्भाव होता है। अतः यह आद्य वेदमंत्र ही सर्व वर्णों का अर्थात् वर्णात्मक भाषाओं का मूल है।

प्राचीन वैदिक विद्वानों की वेदविषयक धारणाएं किस प्रकार की थीं, और उनका समर्थन किस प्रकार से युक्तिवादों से किया जाता था इसकी संक्षेपतः सामान्य कल्पना प्रस्तुत विवेचन से आ सकती है। हमने यहां अर्वाचीन और प्राचीन दोनों मतों का यथाशक्ति संक्षेपतः परिचय दिया है।

# पंजाब-केसरी लाल लाजपतराय

- दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

"इस समस्त प्रोपेगंडा का संचालन तथा संगठन आर्यसमाज की एक गुप्त समिति द्वारा होता है। यह संस्था (आर्यसमाज) आरम्भ में तो धार्मिक थी परन्तु पंजाब में इसकी प्रबल राजनीतिक प्रवृत्ति है। इस समस्त आन्दोलन के केन्द्र तथा आदिस्रोत एक खत्री वकील लाला लाजपतरायं हैं जो पंजाब के कांग्रेस-प्रतिनिधि के रूप में इंगलैंड भी हो आये हैं। वह क्रांतिकारी हैं और उनके हृदय में अंग्रेजी राज्य के प्रति घृणा कूट-कूट कर भरी है। वह (लाजपत राय) स्वयं तो चतुरता से पीछे-पीछे रहता है परन्तु सभी देशी सज्जनों ने लफ्टिनेन्ट गवर्नर (पंजाब) को विश्वास दिया है कि मुख्य संचालक वही है।"

ये शब्द ७ मई १९०७ को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड मिंटो द्वारा अपने सर्वोच्च अधिकारी ब्रिटेन-स्थित भारत-मंत्री और उदारदल के नेता लार्ड मार्ले को दिये गये उस लम्बे समुद्री तार के अंश हैं जो 'भारत-मिंटो तथा मार्ले १९०५-१०' पुस्तक में अंकित हैं। मार्च १८५७ के भारत के प्रथम स्वतंत्रता युद्ध जिसे ब्रिटिश सरकार ने सिपाही विद्रोह व गदर का नाम दिया है, को १९०७ में ५० साल पूरे हो जाते थे। मिंटो ने इसी खरीते मेंआगे कहा, "१८५८ की मई के मध्य को याद रखो । मेरा प्रबल विश्वास है कि राजनीतिक कारणों को छोड़ते हुए भी १८५७ की स्मृतियाँ ही वर्तमान वर्ष को असाधारण बना रही हैं।" गोरी नौकरशाही के दिल में सरकारी जासूसों और अब-गोरे समाचार पत्रों-- जैसे 'पायोनीयर' (लखनऊ), 'सिविल मिलिटरी गजट' (लाहौर), 'इंग्लिशमैन' (कलकत्ता) इत्यादि--ने मजबूती से यह डर बैठा दिया था कि १८५८ की स्मृति में अर्ध-शताब्दी मनाने के गुप्त प्रयत्न हो रहे हैं और इस सारे षड्यंत्र के सूत्रधार तीन व्यक्ति हैं-लाल-बाल-पाल-- अर्थात् पंजाब के लाला लाजपत राय, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक और बंगाल के विपिन चन्द्र पाल। समूचा सरकारी तंत्र इन तीनों के नाम से कांपता था । लार्डमिण्टो ने अपने इस उपर्युक्त तार में लालाजी के सम्बन्ध में पंजाब के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर इबटसन से प्राप्त गुप्त सूचनाओं के आधार पर, आगे यह कहा है कि 'लालाजी के काम करने के दो तरीके हैं: पहला लाहौर, अमृतसर, रावलपिंडी, फिरोजपुर, मुलतान, पेशावर आदि छावनियों में जाकर फौजों में बगावत फैलाना और दूसरा देहात में जाकर उन लोगों को भड़काना; जो किसान हैं और जिनमें से प्रायः सेना की भरती की जाती है।"

लालाजी के सम्बन्ध में एक तीसरा भयंकर बे-बुनियाद आरोप इन अध-गोरे पत्रों और नौकरशाही के जासूसों ने यह लगाया था कि उसी साल काबुल के अमीर हबीबुल्लाह शाह ब्रिटिश सरकार के निमंत्रण पर जब भारत आये थे, तब लालाजी उनसे गुप्त रूप से मिले और बादशाह के भारत पर हमला करने और भारतीय जनता द्वारा पूरा सहयोग देने का वचन उन्होंने दिया था।

## लाहौर के यूरोपियनों में आतंक

इस शताब्दी के पहले दशक के सरकारी खरीतों और भारत-स्थित यूरोपियनों के निजी पत्रों और अर्धगोरे समाचारपत्रों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि उस समय ब्रिटिश सरकार--विशेषतः पंजाब की--लाला लाजपतराय से बेतहाशा घबरायी हुई थी और उन्हें हौआ समझती थी। लाहौर-स्थित यूरोपियनों में गुप्त रूप से यह समाचार फैला दिया गया था कि १९०७ के प्रथम सप्ताह में किसी भी दिन लाहौर पर लाजपतराय के नेतृत्व में हमला हो जाएगा, गोरों और उनके परिवारों को चुन-चुन कर उसी प्रकार मार दिया जाएगा जिस प्रकार सन् ५७ में कानपुर, मेरठ और दिल्ली में मार दिया गया था। इसलिए सब यूरोपियनों को पिस्तौल, बन्दूक से लैस रहना चाहिये और अपने परिवार को लाहौर से तत्काल बाहर भेज देना चाहिये । इसका परिणाम यह निकला कि १९०७ की ७ मई को लाहौर से लगभग सभी यूरोपियनों ने अपने परिवारों को शिमला व कलकत्ता भेज दिया और स्वयं लारेन्स बाग स्थित 'यूरोपियन क्लब' में सशस्त्र आकर रहने लगे। वहां रात भर कड़े पहरे की व्यवस्था थी।

## आर्यसमाज मेरी माता है

राजनीतिक क्षेत्र में भारत के शीर्षस्थ नेता होते हुए भी लालाजी सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करने में कभी संकोच नहीं करते थे कि "आर्यसमाज मेरी माता है और मैं

जो कुछ भी तुच्छ सेवा भारत माता की अपने जीवन में कर सका हूँ, वह सब महर्षि दयानन्द की सजीव और क्रान्तिकारी शिक्षा तथा आन्दोलन के फलस्वरूप ही है।"

लालाजी अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक कट्टर देशभक्त, निर्भीक, संकटों का साहस से मुकाबला करने वाले और बड़े जोशीले वक्ता थे। भाषणकला की दृष्टि से उस समय भारत में दो ही व्यक्ति थे जो इस कला में पारगंत थे ओर जिनके एक-एक शब्द का जनता पर जादू सा असर होता था। यह थे बंगाल के विपिनचन्द्र पाल जो बाद में गांधी-युग में काफी पिछड़ गये थे और दूसरे थे पंजाब के लाला लाजपतराय, जिन्हें जनता ने प्रेम से 'शेरे-पंजाब' की उपाधि से आभूषित किया था। लालाजी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक हिमालय के सदृश देशभक्त और मातृभूमि के सेवा में अविचल रहे। अपने विचारों को वे सदा निर्भीकता से स्पष्ट भाषा में प्रकट करते थे और देश के लिए बड़े-से-बड़े त्याग और आत्म-आहुति देने में वह प्रथम पंक्ति के थे। १६०७ दिसम्बर में सूरत-कांग्रेस में सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले के नेतृत्व में नरम दली और लोकमान्य तिलक तथा श्री खापर्डे के नेतृत्व में गरम दली कांग्रेस नेताओं में जो कलह हुआ और जिसकी चरम सीमा कांग्रेस पंडाल में जूता, लाठी और कुर्सी फैंकने तक हुई, उसका मूलकारण यह था कि लालाजी इसी साल नवम्बर में मांडले की जेल से देश-निर्वासन के ६ मास के बाद छूटकर आये थे।

लालाजी के जीवन को अत्यन्त निकटता से देखने के बाद ब्रिटिश मजदूर दल के प्रमुख पत्रकार श्री नेविन्सन ने कहा थाः-

"लालाजी का जीवन तपस्या तथा उदारता से पूर्ण था। उन्होंने निर्धनों तथा अशिक्षितों की सेवा के लिए, भारी सांसारिक सफलता का जीवन त्याग दिया था। वह उन पुरूषों में से थे जिनकी आत्माओं में अपने देशवासियों के दुःख प्रवेश कर जाते हैं। (लाला लाजपतराय : जीवनी — लेखक —श्री अलगूराय शास्त्री, पृष्ठ २४१)

लालाजी के ऐसे अदम्य उत्साहपूर्ण और अत्यन्त लोकप्रिय नेतृत्व से गोरी नौकरशाही का घबराना स्वभाविक ही था। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक अपने अध्यापन कार्य को छोड़कर, देश की तत्कालीन अवस्थाओं से बाध्य हो, राजनीति में आये, ठीक इसी प्रकार ,लालाजी भी पंजाब चीफ कोर्ट के (उस समय तक यह हाईकोर्ट नहीं बना था) सफल और चोटी के वकील होते हुए भी राजनीति में अवस्थाओं द्वारा घसीट लिये गये। पर, राजनीति में रहते हुए भी उन्होंने कभी अपने को आर्यसमाज की विचार-धारा से विच्छिन्न नहीं किया। प्रथम युद्ध के समय जब उन्हें कई वर्ष तक अमेरिका में रहना पड़ा तब उन्होंने सबसे पहला काम अंग्रेजी में 'आर्यसमाज का इतिहास' लिखने का किया। इस पुस्तक ने विदेशों में आर्यसमाज का परिचय दिया।

**जन्म, बचपन, शिक्षा**

लाजपतराय का जन्म २८ फरवरी सन् १८६५ को अपनी ननिहाल जिला फीरोजपुर (पंजाब) के ठोड़ी ग्राम में हुआ। इनके पिता राधाकृष्ण लुधियाना (पंजाब) के जगरावां कस्बे में रहते थे। पिता सरकारी प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। लाजपतराय के तीन भाई और दो बहनें थीं पिता का वेतन, कई वर्ष के बाद, ३५ रू मासिक तक पहुँचा था। पिता ने ऐसे स्कूल में शिक्षा पाई थी जिसका मुख्य अध्यापक एक मौलवी था। इसलिए राधाकृष्ण पर इस्लाम का गहरा प्रभाव था। वे घर में नमाज पढ़ते, रोजे रखते, तहमद बाँधते और कुरान का पाठ करते थे। वैश्य और जैनी होने से मांस-भक्षण तो नहीं करते थे, पर मुसलमानें को प्रायः अपने घर भोजन कराते और कभी उनके घर खा आते, अथवा उनका पका भोजन अपने घर ले आते। मास्टर राधाकृष्ण को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का बडा शौक था। विश्व के सब मुख्य धर्मो की उन्हें अच्छी जानकारी थी। लालाजी ने १६११ में अपने पिता की स्मृति में जगरावाँ में 'राधाकृष्ण हाईस्कूल' स्थापित किया और कई प्राइमरी स्कूल खोल दिये थे।

**चोटी के वकील : आर्यसमाज में प्रवेश**

लाजपतराय कुशाग्रबुद्धि छात्र थे। १५ वर्ष की आयु में उन्होंने १८८०में पंजाब और कलकत्ता — दोनों विश्वविद्यालयों से मैट्रिक परीक्षा पास की। फिर लाहौर गंवर्नमेंट कालेज में दाखिल हो गये। एफ. ए. की पढ़ाई के साथ कानून की पढ़ाई भी शुरू कर दी। पिता मुश्किल से आठ-दस रू मासिक इस किशोर को भेजते। लाजपतराय

को अत्यन्त कम खर्च करते हुए लाहौर जैसे नगर में पढ़ना पड़ता था। मुख्तारी पास करके १८८३ में पहले जगरावाँ, फिर हिसार में और अन्त में १८६२ में लाहौर में वकालत आरम्भ कर दी। हिसार में आप लगभग ६ वर्ष रहे और विशिष्ट सफल वकील थे। मासिक आय हजार-डेढ़ हजार रू. थी। इनके कालेज-जीवन के सहपाठियों में पं गुरूदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, राजा नरेन्द्रनाथ इत्यादी थे। इनके सहवास से, इन पर भी आर्यसमाज का प्रभाव पड़ा और हिसार में रहते हुए आपने आर्यसमाज में सोत्साह भाग लेना आरम्भ कर दिया था। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग प्रायः इनके मकान पर ही होते। पाँच वर्ष बाद लाजपतराय जी के उद्योग से ही हिसार में भव्य आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण हुआ। हिसार में वे नगर-पालिका के सदस्य और कई वर्ष तक इसके अवैतनिक मंत्री भी रहे।

### डी ए वी कालेज के स्तम्भ

१८६२ में आप लाहौर आ गये और प्रांत के मूर्धन्य वकीलों में आपने शीघ्र ही स्थान पा लिया। साथ ही गुरूदत्तजी और हंसराजजी के साथ मिलकर खूब उत्साह से आर्यसमाज की सेवा करने लगे। १८८६ में महर्षि दयानन्द की स्मृति में लाहौर में डी ए वी कालेज स्थापित हो चुका था। आपका इस संस्था के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। लालाजी की वक्तृत्व कला में तो दैवी शक्ति थी। आपका भाषण मुर्दा-दिलों में भी जोश पैदा कर देता था। डी ए वी कालेज के लिए अपनी इस अद्भुत वाक्शक्ति का प्रयोग कर इन्होंने लाखों रूपया पंजाब और अन्य प्रान्तों में दौरा कर इकट्ठा किया और स्वयं भी अपने पास से पुष्कल दान देते रहे। इस कालेज की प्रबन्ध समिति के आप वर्षों तक मंत्री और उपप्रधान भी रहे। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर धर्म-प्रचार और कालेज के लिए अपील लालाजी ही किया करते थे। हजारों की संख्या में श्रोता मंत्रमुग्ध हो आपका भाषण सुनते थे। अपील के बाद अनायास ही धन की वर्षा आरम्भ हो जाती थी। लालाजी कई वर्ष तक डी. ए. वी. कालेज में,बिना वेतन के, इतिहास और राजनीति पढ़ाते रहे।

### आकालग्रस्त क्षेत्रों में सेवा-कार्य

आर्यसमाज की शिक्षा के प्रभाव से लालाजी दरिद्रनारायण की सेवा के लिए सदा अग्रसर रहते थे। १८८६ में संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) के अगरा बुन्देलखंड इलाके में और १६०० में राजस्थान में भयंकर अकाल पड़ा। फिर १६०७-८ में उड़ीसा और मध्यप्रदेश में दुर्भिक्ष हुआ। हजारों हिन्दू विधर्मी होने लगे। ईसाइयों ने जनता की गरावी से अनुचित लाभ उठाने के प्रयत्न शुरू कर दिये। लालाजी ने अपने सहयोगी आर्य सदस्यों और स्वयंसेवकों सहित सहायता और राहत का काम संगठित रूप से प्रारम्भ कर दिया। हजारों हिन्दुओं की रक्षा हुई। करीब ३०० अनाथ बच्चों को लेकर जब लालाजी लाहौर स्टेशन पहुँचे तो नगर-वासियों ने हजारों की संख्या में वहाँ पहुँच उनका स्वागत किया। अनाथ बच्चों को इससे बड़ा आश्वासन मिला कि इतनी विशाल जनता उनके साथ है। इन अनाथ बच्चों केलिए लालाजी ने उसी समय आर्यसमाज की तत्वावधानता में लाहौर, फीरोजपुर और मेरठ में अनाथालय कायम किये। देश-विभाजन तक ये अनाथालय जनता की बड़ी ठोस सेवा करते रहे।

### कांगड़ा-भुकम्प में राहत-कार्य

१६०५ में पंजाब के काँगड़ा नगर में भयंकर भूकम्प आया। जन-धन की भारी क्षति हुई। लालाजी कालेज के छात्रों और अन्य आर्यसज्जनों के साथ वहाँ अविलम्ब सहायता के लिए पहुँच गये।

### गुलाबदेवी तपेदिक अस्पताल

तपेदिक के रोगियों के औषध-उपचार और खुले स्वच्छ वातावरण में रहते हुए भोजन-निवास आदि की समुचित व्यवस्था के लिए लालाजी ने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में लाहौर में 'गुलावदेवी तपेदिक अस्पताल' खोला था। विभाजन के बाद, जालन्धर में इसकी पुनः स्थापना की गयी है।

### लाहौर की जनता ने लालाजी को कंधों पर उठा लिया

पंजाब के नौजवान तो आप पर इतने दिलदादा थे कि नवम्बर १६०५ में जब आप इंग्लैंड में कांग्रेस शिष्ट-मंडल की ओर से प्रचार-कार्य समाप्त कर भारत वापस आये और लाहौर पहुँचे तो वहाँ अपार जनसमूह स्टेशन पर आपके स्वागत के लिए मौजूद था। उस समय लाहौर के वयोवृद्ध नेता श्री जोगेन्द्र बोस ने आपको अपने कंधों पर उठा लिया।

जब बग्घी में आपको बैठाया गया तो युवकों ने घोडे हटाकर अपने हाथों से उस गाड़ी को शहर में दो मील से अधिक दूरी तक खींचा। देश में ऐसा सम्मान, संभवतः, सबसे पहले आपको ही मिला था।

लाला जी के जीवन पर अन्य जिन व्यक्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा वह थे इटली की स्वाधीनता-संग्राम के नेता मेजिनी गैरीबाल्डी और भारत के महापुरूष भगवान् श्रीकृष्ण तथा वीर शिवाजी। आपने उर्दू में इन सब महापुरूषों के जीवन-चरित्र प्रकाशित किये और वे खूब बिके। सरकार इससे घबरा गयी और गुप्त सरकुलर निकालकर स्कूलों में इन पुस्तकों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया।

### बंग-भंग और अंकाल

१६०५ में भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल के राजनीतिक आन्दोलन को निर्वल करने और मुसलमानों को खुश करने के लिए बंगाल के दो टुकड़े कर दिये, पूर्व और पश्चिम बंगाल। इससे सारे देश में विरोध की ज्वालाएं भड़क उठीं। गुप्त षड़यन्त्र दल कायम हो गये। कई जगह यूरोपियन मारे गये। इस समय लाला जी देश के प्रमुख राजनीतिक नेताओं में थे। १६०३ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में पहली बार हुआ। लाला जी अब लाहौर में ही वकालत करते और प्रमुख वकील थे। इस अधिवेशन में लाला जी ने काफी हिस्सा लिया और यहां लोकमान्य तिलक और श्री गोखले से परिचय हुआ जो बाद में काफी घनिष्ठ हो गया।

### 'पगड़ी सँभाल ओ जट्टा'

पंजाब की नौकरशाही की आंखों में लाला जी खूब चुभ रहे थे। वह मौके की तलाश में थी। प्रान्त का तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर इबटसन बड़ा अदूरदर्शी और कट्टर गोरा सिविलियन था। १६०७ में उसने पंजाब की नहरी आबादियों, लायलपुर और मिंटगुमरी के जिलों, में ऐसे भूमि-कानून बनाये जिससे इलाके के किसानों में खलबली मच गयी। उधर, रावलपिंडी के इलाके में भूमि का लगान बढ़ा दिया। इस प्रकार सारे पंजाब के जमींदार तिलमिला उठे। इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी शामिल थे। लायलपुर और रावलपिंडी – दोनों इस आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे।

सरदार अजीतसिंह – शहीद भगतसिंह के चाचा इसके प्रमुख नेता थे। लाला जी का इस आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। १६०७ मार्च के अन्त में लायलपुर में 'जमींदार एसोसिएशन' की ओर से एक सभा की गयी। संयोजकों के अत्यन्त अनुरोध पर लाहौर के कुछ प्रमुख हिन्दू-मुस्लिम वकीलों के साथ लाला जी वहां पहुंचे और उन्होंने केवल वह आवेदन पत्र पढ़कर सुनाया जो सरकार के पास इस कानून के विरोध में भेजा जाना था। अजीतसिंह के भाषण खूब गर्म थे और जनता बार-बार उनसे बोलने के लिए आग्रह कर रही थी। यहां पर पंजाब का प्रसिद्ध गीत 'पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा' पहली बार श्री बांकेदयाल ने गाया था और जनता ने बहुत पसन्द किया था। रावलपिंडी में आन्दोलन के ५ प्रमुख नेताओं को,जो वकील थे, जिला मजिस्ट्रेट ने बुलाकर वकालत का लाइसेंस जब्त करने का नोटिस दिया। इससे सारे पंजाब में खलबली मच गयी। स. अजीतसिह ने यहां भी काफी गर्म भाषण दिया था। इन वकीलों पर यही जुर्म लगाया गया कि वे इस सभा में शामिल हुए थे। लाला जी रावलपिंडी पहुंचे। नगर में हड़ताल थी। नोटिस रद्द करवाने की सुनवाई जब कचहरी में होने को थी तब करीब २० हजार लोग वहां जमा थे । सरकार इससे घबरा गयी और जिला मजिस्ट्रेट ने नोटिस वापस ले लिया। पर पुलिस ने अपने जासूस छोड़ रखे थे जो जनता को लूटमार करने और गोरों को पीटने के लिए उकसा रहे थे। शहर में कुछ फसाद हो गये और राह-चलते गोरों को पीटा भी गया। कई लोग गिरफ्तार किये जिनमें कई शिक्षित युवक भी थे।

### मांडले को देश-निर्वासन

लालाजी की गिरफ्तारीके सम्बन्ध में अब लाहौर में अफवाहें उड़ रही थीं। कुछ गोरे शासकों ने संकेत किया कि 'सारी शरारत की जड़ तो लाला लाजपतराय है। पर वह अभी तक भी स्वतंत्र घूम-फिर रहा है और जल्दी ही उसकी बारी आने वाली है।" आखिर ६ मई १६०७ को प्रातः जब लाला जी कचहरी जाने को तैयार ही थे, तभी अनारकली थाने के दो पुलिस अधिकारी उन्हें बुला ले गये। कोठी से अपनी बग्घी पर वह बाहर निकले ही थे कि दो गोरे पुलिस पायदान पर चढ़ गये। यहीं से बन्द गाड़ी में स्टेशन पर तैयार एक स्पेशल गाड़ी द्वारा – जिसमें पुलिस का कड़ा पहरा था और जिसकी सब खिड़कियां दरवाजे बन्द थे – उन्हें

कलकत्ता और वहां से जहाज द्वारा बर्मा और अन्त में १५ मई को मांडले जेल में बन्द कर दिया गया। लाला जी को यह पता लग गया कि स. अजीतसिंह को भी यह निर्वासन-दंड दिया गया था। दोनों मांडले जेल में होते हुए भी एक दूसरे से मिल नहीं सकते थे। यहां पर एक गोरे अधिकारी ने लाला जी से मुलाकात करते हुए कहा, "आपने सेनाओं को बरगलाया था और ब्रिटिश सरकार आपको दूसरा नाना साहब समझती है।" १८५७ में जो नाना साहब द्वारा सिपाही-विद्रोह के लिए हुआ वही १९०७ में लाजपतराय द्वारा होगा। यह विश्वास, आमतौर पर ब्रिटिश सरकार, यूरोपियनों और अधगोरों में व्याप्त था।

### मांडले से मुक्ति

पर लाला जी का यह देश-निर्वासन सरकार को बड़ा महंगा पड़ा। सारे देश में प्रबल आन्दोलन, असन्तोष और विरोध की भयंकर अग्नि भड़क उठी। इसकी गूँज ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में भी लगातार उठने लगी। वहाँ मेम्बरों द्वारा, करीबन हर रोज ही, लाला जी के इस निर्वासन और भारत में व्याप्त घोर असन्तोष के बारे में प्रश्न पूछे जाते और भारत-मंत्री लार्ड मार्ले के लिए सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन हो जाता। स्थिति को संभालना दिन-प्रतिदिन कठिन हो रहा था। यह भी स्पष्ट हो चुका था कि लाला जी के विरूद्ध ऐसा गम्भीर आरोप नहीं था जिसके लिए सामान्य अदालती कार्यवाई न कर विशेष कानून के आधीन ऐसी कठोर सजा को न्यायसंगत ठहराया जा सकता। आखिर ११ नवम्बर १९०७ को लाला जी को मुक्ति का सन्देश मिल गया। फिर उसी प्रकार बंद गाड़ी और कड़े पुलिस पहरे में लाला जी को मध्य प्रदेश के रास्ते से लाहौर लाया गया। स. अजीतसिंह को दूसरी गाड़ी से लाया गया।

### अधगोरे पत्रों पर मानहानि का मुकदमा

कलकत्ता के अधगोरे पत्र 'इंगलिशमन' और लंदन के "डेली ऐक्सप्रेस" पर लाला जी ने मिथ्या आरोप लगाने के हेतु पचास-पचास हजार रूपये के मानहानि के मुकदमें किये। लाला जी दोनों मुकदमों में जीत गये। "इंग्लिशमैन" पर मुकदमे के खर्च के अतिरिक्त १५ हजार रूपये की और 'डेलो ऐक्सप्रेस' पर ५० पौंड हर्जाने की डिग्री हुई। 'डेली ऐक्सप्रेस' पर कम डिग्री होने का कारण यह था कि लाला जी का अधिक देर तक लंदन में केवल इसी काम के लिए ठहरना संभव नहीं था। लालाजी ने हर्जाने की दोनों राशियाँ सार्वजनिक संस्थाओं को दान कर दीं।

### कलकत्ता कांग्रेस की अध्यक्षता

कांग्रेस का प्रचार करने और विदेशों में भारत की दशा से जनता को परिचित कराने तथा स्वतंत्रता-आन्दोलन में सहायता व सहानुभुति प्राप्त कराने के लिए लाला जी कई बार योरूप-अमरीका गये। प्रथम युद्ध के समय तो उनके भारत वापस आने पर रोक लगा दी गयी थी। जब वह वापस आये तो कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आ चुका था। लाला जी ने इसमें पूरा सहयोग दिया। १९१९ में गांधी जी के असहयोग कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ता में विशेष कांग्रेस अधिवेशन हुआ जिसके लिए लाला जी को अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद लाला जी के सहयोग से गांधी जी का सविनय अवज्ञा का आन्दोलन देश भर में विशेषतः पंजाब में, जोरों से चलने लगा। १९२१ दिसम्बर में लाला जी को गिरफ्तार कर लिया गया और लाहौर जेल में दो वर्ष के कारावास के दंड से साथ बन्द कर दिया गया।

### कांग्रेस से मतभेद-स्वराज्य पार्टी में

इसके बाद भारतीय राजनीति में परिवर्तन आने लगा। एक ओर देश में साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये और दूसरी ओर गांधी जी के पंचसूत्री बहिष्कार कार्यक्रम की व्यर्थता देख जेल से छूट कर आये नेताओं ने इस पर पुनः विचार किया। इसी के फलस्वरूप स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ। पंजाब का चार्ज लाला जी को दिया था। पर लाला जी के मतभेद कांग्रेस से बढ़ते गये क्योंकि गांधी जी तथा अन्य कांग्रेस नेताओं की नीति अत्यधिक मुस्लिम-पक्षीय थी। हिन्दू हितों की खुले आम हत्या हो रही थी। कोकोनाडा काँग्रेस में अध्यक्ष पद से मौलाना मुहम्मद अली ने प्रस्ताव किया था कि अछूतों का हिन्दू और मुसलमानों में बँटवारा कर दिया जाए। लाला जी इस प्रस्ताव से बहुत दुःखी और विक्षुब्ध हुए। आपने सन् १९२५ के आरम्भ में अछूतोद्धार का आन्दोलन शुरू किया। देश में राजनीतिक जागरण पैदा करने के लिए लाला जी ने लाहौर में "तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स" स्थापित किया। कांग्रेस आन्दोलन के समय आपने उर्दू में 'वन्दे मातरम्' दैनिक आरम्भ किया था और

अब 'पीपुल' नामक अंग्रेजी में साप्ताहिक जारी किया। यह पत्र राजनीति-प्रधान था। आपने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें 'अनहैप्पी इंडिया' का बहुत प्रचार हुआ। लाला जी यह जानते थे कि निष्ठावान् कार्यकर्ताओं के बिना राष्ट्र कभी उन्नत नहीं हो सकता। इसी दृष्टि से आपने 'लोक सेवक मंडल' (सर्वेण्ट्स आफ पीपुल सोसाइटी) कायम किया। जिसके द्वारा तैयार किये हमारे देश के प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री तथा राजर्षि पुरूषोत्तदास टंडनं भी इसी संस्था के सदस्य थे। वस्तुतः, श्री लालबहादुर को राजनीतिक जीवन की दीक्षा लाला जी के सम्पर्क और उनकी इस संस्था में आने से ही मिली। लाला जी ने इस संस्था को अपना ४० हजार पुस्तकों का पुस्तकालय और डेढ़ लाख रू. का अपना भवन दान दे दिया था। १९२५ में लाला जी स्वराज्य पार्टी की ओर से केन्द्रीय असेम्बली में जालन्धर क्षेत्र से निर्विरोध चुन लिये गये।

### साइमन कमीशन का बहिष्कार और लाठी प्रहार

ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त पूर्ण अंग्रेजों का कमीशन-जिसे साइमन कमीशन कहा जाता है--भारत की वैधानिक योग्यंता की जांच के लिए १९२८ फरवरी में भारत आया। कांग्रेस ने इसके पूर्ण बहिष्कार की घोषणा की। ३० अक्टूबर को कमीशन लाहौर पहुँचा। इस बहिष्कार-आन्दोलन का नेतृत्व लाला जी कर रहे थे। भारी जुलूस 'साइमन लौट जाओ' नारे लगाता हुआ स्टेशन पर सर्वथा शान्त और अनुशासन में खड़ा था। अधिकारियों ने उसी समय शान्त जुलूस पर पुलिस को डंडे चलाने का आदेश दे दिया। लाला जी पर खास तौर से लाठी-प्रहार किया गया और स्वयं सीनियर सुपरिण्टेण्डेण्ट स्काट ने यह कार्य किया। स्काट का साथी साण्डर्स भी इसमें सहायक था। लाला जी ने बड़ी वीरता से इन सतत लाठी-प्रहारों को सहा। आपने ललकार कर पुलिस अफसर का नाम पूछा, पर इसका उत्तर अधिक दंड-प्रहार से मिला। इस मार से ६४ वर्षीय वृद्ध लाला जी चारपाई से फिर उठ न सके। लाला जी व जनता की ओर से इस कांड की खुली और निष्पक्ष जांच की मांग कई बार की गई, पर नौकरशाही राजी न हुई।

### प्रत्येक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न पर कील

इस बीमारी में भी लाला जी कार्य करते रहे। १६ नवम्बर को उनकी हालत बिगड़ गयी।। ३० अक्टूबर की शाम को सार्वजनिक सभा में लाला जी ने जो शानदार शब्द कहे थे वे सचमुच ब्रिटिश अत्याचारियों के लिए भयंकर चेतावनी के रूप में थे और इतिहास में सदा स्मरण किये जाएंगे। आपने कहा--"मुझ पर किया हुआ प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की एक कील सिद्ध होगा!"

१७ नवम्बर भोरवेला में देश का लगभग आधी सदी का यह साहसी, वीर, अदम्य, उत्साही और बहुमुखी प्रतिभाशाली नेता समूचे देश को शोक-सागर में डुबोकर मातृभूमि पर बलिदान हो गया।

### आर्यसमाज के प्रति असीम कृतज्ञता

लाला लाजपतराय ने मांडले के देश-निर्वासन से वापस आकर १९०६ में लाहौर आर्यसमाज के मंच से जो शब्द कहे थे और जो उन्होंने अपनी आत्म-कथा में भी लिखे हैं, वह प्रत्येक आर्य सदस्य के लिए सदा स्मरणीय हैं। लाला जी आर्यसमाज के प्रति कितने निष्ठावान् और अत्यधिक कृतज्ञ थे, यह उनके निम्न शब्दों से प्रकट होता है :-

"आर्यसमाज के उपकार मेरी गर्दन पर अनगिनत, असीम हैं। अगर मेरा बाल-बाल आर्यसमाज पर न्यौछावार हो जाए, तो भी मैं उसके उपकारों से उऋण नहीं हो सकता। यदि मैं आर्यसमाज में दाखिल न होता तो ईश्वर ही जाने मैं क्या होता। मगर यह सच है कि मैं आज जो कुछ हूं, वह न होता।"

आज आर्यसमाज में कृतज्ञता की इस अगाध भावना को निष्ठा के साथ अविचल रूप से प्रतिष्ठित करने की विशेष आवश्यकता है। □□

समाचार

## -: हिन्दी-दिवस :-

हिन्दी प्रचार सेवा समिति नागदा अध्यक्ष डा० लक्ष्मीनारायण कडलुवा द्वारा हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन आर्य समाज मन्दिर नागदा में किया गया। समारोह की अध्यक्षता श्री रमेशचन्द्र दलाल ने की। मुख्य अतिथि श्री मति जय श्रीमती रमा ब्यौहार, विशेष अतिथि म० भा० आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री पटेल श्री सेवाराम जी आर्य थे। हिन्दी साहित्य परीक्षा आयोजन के तत्वाधान में आयोजित विद्याविनोद, विद्यारत्न, विद्या विशारद एवं विद्या वाचस्पति के परीक्षार्थियों को उपाधि पत्र तथा पारितोषिक डा० लक्ष्मीनारायण कडलुवा ने वितरित किये।

# राष्ट्र की समस्याएं और समाधान

– बालासाहेब देवरस

**सरसंघ चालक राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ**

आज अपने देश का चित्र सुखकारक नहीं है, उल्टे भयावह है। संकट के बादल चारों ओर से घिरते दिखाई दे रहे हैं। ये संकट बाह्य भी हैं, आंतरिक भी। जिस प्रकार दुर्बल व्यक्ति पर रोगों का आक्रमण सरलता से हो जाता है उसी प्रकार दुर्बल राष्ट्र भी संकटों का सहज शिकार बनता है। अपने देश के लोगों के हाथों में सत्ता आने के बाद भी देश मजबूत नहीं हुआ। विदेशी राज्यकर्ताओं के विरुद्ध जैसी एकता दिखाई देती थी उसका तो आज चिन्ह भी दिखाई नहीं देता। विघटनकारी शक्तियां प्रबल हो रही हैं और लगता है कि उन्हें परास्त करना शासन के लिए संभव नहीं हो पा रहा है।

इन सब संकटों के लिए समाज की संगठित शक्ति ही एकमेव उत्तर है। इस देश के भाग्यनिर्माण की जवाबदारी-हिन्दू समाज की है और संगठित हिन्दू समाज ही उस जवाबदारी को निभा सकता है यह हमारा प्रारम्भ से ही चिन्तन रहा है। हिन्दू समाज में सब प्रकार की क्षमता है, केवल उस क्षमता की अनुभूति उसे कराना और ऐसी अनुभूति जिन्हें हुई है उनका एक मजबूत संगठन खड़ा करना आवश्यक है। किन्तु दुर्भाग्य से हमारे नेताओं ने इस क्षमता को नहीं पहचाना। उन्होंने समाज को उसकी सुप्त शक्ति का ज्ञान नहीं कराया। इसलिए प्रत्येक बार किसी भी बात को करने के लिए कभी इसका अनुनय करना, कभी उसके सामने झोली फैलाना और मदद मिले इसके लिए सब तरहके समझौते करने बैठना यही आज हमारे सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन की रीति बन बैठी है। कोई भी देश उस देश के राष्ट्रीय समाज के बलबूते पर ही स्वतंत्र हुआ करता है और उसी के बलबूते अपना स्वातंत्र्य टिकाये भी रखता है। किन्तु हमने स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिये खुशामद का मार्ग अंगीकृत किया मानों केवल हिन्दू समाज के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त करना संभव ही नहीं था। अपने समाज के संबंध में आत्मविश्वास न होने के कारण ही खुशामद की नीति का अवलंबन किया गया। राष्ट्रबाह्य निष्ठा उत्पन्न करने वाले खिलाफत सरीखे अत्यन्त अनिष्ट आन्दोलन का भी हमारे यहां समर्थन किया गया। इस तुष्टीकरण की नीति के कारण ही देश का विभाजन हुआ, असंख्य लोगों का कतल हुआ, अनगिनत लोग अपने घरद्वार से वंचित हो गये। उनके ऊपर निर्वासित बनकर जीवन बिताने का दुर्धर प्रसंग उपस्थित हुआ। महात्मागांधी सरीखे महान् नेता द्वारा मुसलमानों का अनुनय किये जाने के बाद भी विभाजन टल नहीं सका।

देश स्वतंत्र होने के बाद भी स्वावलंबन का मार्ग हमें नहीं सूझा। हमारी सरकार ने लोगों के आर्थिक विकास की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। किन्तु इस संबंध में भी हम अपने स्वयं के बलबूते कुछ करके दिखायेंगे यह भावना नहीं थी। विदेशियों की सहायता और विदेशों से कर्ज लेने का मार्ग ही हमारे राजनीति धुरंधरों को पसन्द आया। **कर्ज लेकर शान बघारने वाले किसी मुफ्तखोर मालगुजार के समान हमने कर्ज के बलबूते पर सारी शानशौकत दिखाई। सुदृढ़ आर्थिक आधार पर यदि देश को खड़ा करना हो तो उसके लिये लोगों को आर्थिक परिश्रम करना चाहिए, स्वयं मितव्यता से रहते हुए राष्ट्र का वैभव बढ़ाना चाहिए, यह बात हमने सिखाई ही नहीं। कर्ज से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधा व शानशौकत में हमारे राज्यकर्ता बह गये और कर्ज का पहाड़ बढ़ाते चले गये। कर्ज देने वाले देश व संस्थाएं आज स्वयं की नीतियाँ व इच्छाएँ हमारे देश पर लाद रहीं हैं। किन्तु उन्हें दोष देने में क्या अर्थ? यदि हम ही अपने हिताहित को समझ नहीं पाये तो इसमें उनका क्या दोष?**

वस्तुतः स्वालम्बन के बिना शक्ति व प्रगति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इस देश में बहुसंख्या में रहने वाला, इस देश को अपनी मातृभूमि मानने वाला व देश के लिए किसी भी प्रकार का त्याग करने के लिए जिसे सहज तैयार किया जा सकता है ऐसे हिन्दू समाज को ही यह सब ठीक करना होगा और इसीलिए हिन्दू संगठन का मूलभूत कार्य करना होगा। सब कुछ सरकार ही करेगी इस पर हमारा कभी विश्वास नहीं रहा। हमारी यह पक्की धारणा रही है और आज भी है कि सामाजिक शक्ति ही अपेक्षित बदल ला सकती है। राष्ट्र की सुदृढ़ता के लिए, राष्ट्र के स्वातंत्र्य को

अबाधित रखने के लिए सामाजिक संगठन ही एकमात्र मौलिक आधार है। समाज यदि अच्छी तरह से संगठित हो जाये तो सरकार भी ठीक तरह से व्यवहार करेगी।

जिस समाज की संगठितता के ऊपर राष्ट्र का स्वातंत्र्य व सामर्थ्य अवलंबित हो सका तेजोभंग करके कुछ भी मिलने वाला नहीं है। हमें अपने समाज के दोषों व न्यूनताओं का पूरा ज्ञान रखना होगा। जाति, भाषा, प्रांत आदि भेदों से वह ग्रस्त है । किन्तु उसके साथ-साथ उसके गुणों व उसकी क्षमता की जानकारी भी अपेक्षित है। यदि कोई सोचता होगा कि हिन्दुओं की अवहेलना कर, उन्हें संकुचित और साम्प्रदायिक कहकर इस देश को बलवान बनाया जा सकता है तो यह मृगमरीचिका के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए हमारी अत्यन्त स्पष्ट रूप से घोषणा है कि हिन्दू सम्प्रदाय नहीं है, राष्ट्र है जो उसके हित में है वही राष्ट्र के हित में है। किन्तु केन्द्र में सत्तारूढ़ सरकार ने राष्ट्रीय शक्ति की इस आधार शिला की ओर ही दुर्लक्ष किया और अपने नीति निर्धारण एवं क्रियाकलापों में आत्मनिर्भरता की शक्ति का सहारा लेने के स्थान पर परावलंबल की दुर्बलता का पल्ला पकड़ा।

अयोध्या में राम मन्दिर का प्रश्न सरकार की दुर्बलता के कारण ही लटका हुआ है। स्वाभिमानी राष्ट्र गुलामी के सारे चिन्ह मिटा दिया करते हैं। अयोध्या में रामजन्मभूमि पर राम मंदिर का होना साम्प्रदायिक नहीं, राष्ट्रीय श्रद्धा का विषय है यह बात सबको समझ लेनी चाहिए। अपनी केन्द्रीय सरकार को भी समझ लेना चाहिए। जैसे व्यक्ति की सहनशीलता की एक सीमा होती है वैसे की समाज की सहनशीलता की भी सीमा होती है। इसलिए सरकार हिन्दू समाज की सहनशीलता का अंत देखने का प्रयत्न न करे यही बात सब दृष्टि से श्रेयस्कर होगी। यदि किसी का सोचना है कि राम मंदिर की समस्या न्यायालय में हल होगी तो यह निरा भ्रम है। कुछ दिनों पूर्व मुंबई के एक सायंकालीन दैनिक में छपे एक लेख में सीमा सुरक्षा बल के सेवानिवृत्त पुलिस प्रमुख श्री के. एफ. रूस्तमजी ने भी कहा है "इस प्रकार की समस्याएं न्यायालय का विषय नहीं हो सकतीं। बल्कि ऐसी समस्याओं के ऊपर यदि न्यायालय निर्णय देने लगें तो न्यायालयों की विश्वसनीयता में ही कमी आ सकती है। इसलिए सुप्रीम कोर्ट को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस प्रकार की समस्याओं में न्यायालय को फंसाना उचित नहीं होगा।"

न्यायालय के निर्णयों की केन्द्र सरकार ने भी भला कितनी कदर की है?

न्यायालय के निर्णय का जो [illegible] है उसे देखना चाहिए कि स्वयं सरकार ने [illegible] न्यायालय के निर्णय की किस प्रकार अवहेलना की है। "शाहबानो" के निर्वाह भत्ते के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने जो मानवतावादी निर्णय दिया था उसका पालन केन्द्र सरकार ने कहां किया? सरकार ने क्या संविधान में ही संशोधन कर उस कानून को नहीं बदल डाला? वास्तव में राम मन्दिर की समस्या न्यायालय के निर्णय का प्रश्न ही नहीं है। वह तो सरकार की इच्छाशक्ति का प्रश्न है और वैसी इच्छाशक्ति सरकार को प्रगट करनी चाहिये।

आर्थिक गुलामी के संभाव्य संकट का सामना करने के लिए भी स्वावलम्बन का मार्ग ही उपयुक्त है। "स्वदेशी" के अंगीकार से ही हम इस संकट में से रास्ता निकाल सकते हैं । अपने सुखचैन में यदि कटौती भी करनी पड़े तो हम करें ऐसा सरकार व जनता दोनों का ही संकल्प होना चाहिए। अन्नधान्य आयात की नीति सरकार को पुनः क्यों स्वीकार करनी पड़ी यह बात समझ में नहीं आती। हमारा निश्चय होना चाहिए कि सब बातों में हम आत्मनिर्भर बनेंगे। आज भले ही न हों, किन्तु वैसा बनना हमारी समस्त नीतियों व कार्यक्रमों का लक्ष्य होना चाहिये । इसके लिए जो भी कीमत चुकानी होगी, चुकायेंगें। सरकारी कारोबार पर कितना प्रचंड खर्च हो रहा है, उसे हम कम करेंगे। कुछ सालों तक विदेशों को अपने प्रतिनिधिमंडल नहीं भेजेंगे, विदेशी दौरे कम करेंगे, सिर ऊंचा करके दुनिया के सामने खड़े रहेंगे ऐसे आत्मविश्वास की भाषा बोलने वाले व उस प्रकार व्यवहार करने वाले राजनीतिक व सामाजिक नेता आज चाहिंए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम एकाकी अपनी अलग खिचड़ी पकाते रहेंगे। विकसित तंत्रज्ञान जो हमारे पास नहीं है वह हम विचार करके ही उन्हें स्वीकार करेंगे । और उसके साथ-साथ अपने स्वयं का तंत्रज्ञान भी हम विकसित करेंगे । ऐसा आत्मविश्वास सर्वसाधारण जनता के मन में निर्माण करने वाली पंचवर्षीय योजना हमें चाहिए। सात पंचवर्षीय योजनाओं की दिशा में ही आठवीं पंचवर्षीय योजना भी यदि जाने वाली होगी तो राजनैतिक दासता से मुक्त हुई हमारी मातृभूमि आर्थिक दासता के पाश में फंसे बिना नहीं रहेगी वस्तुतः देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति की भावना चमत्कार दिखायेगी। जगत् के इतिहास में इसके अनेक उदाहरण हैं। इस भावना के बल पर ही जागरूक राष्ट्रभक्त नेतृत्व ने मरूभूमि को नन्दनवन में बदला है, खंडित राष्ट्र को पुनः जोड़ा है, इतिहास को एक नई दिशा दी है।

(क्रमशः)

# हमारा राष्ट्रीय नाम-एक प्रश्न चिन्ह

-डा. शैलेन्द्र ललित

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अनुयायियों से यह कहीं नहीं कहा कि मैं प्रमाण हूँ, जो मैं कहता हूं वह मानो; प्रत्युत उन्होंने न्याय (तर्क तथा वेद को ही प्रमाण माना। वेद शाश्वत सिद्धान्तों, नियमों और उपदेशों का बीजग्रन्थ है। उसमें अनित्य इतिहास को खोजना पानी बिलो कर मक्खन निकालने के समान व्यर्थ प्रयास ही नहीं अपितु स्वयं भ्रान्त होकर सत्य से दूर जाना है।

महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' में 'स्वमन्तामन्तव्य' लिख कर अपनी स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर दी है यद्यपि उनके मन्तव्य-अमन्तव्य प्रमाणसिद्ध तथा वेदानुकूल हैं। स्वामी जी ने आर्यसमाज के दस नियम बनाये जिनमें से चार नियमों में 'सत्य' का उल्लेख है। पहले नियम में 'सत्य विद्या' पद का प्रयोग है। इसमें विद्या शब्द यदि संज्ञा माना जाय तो 'विद्या' का अर्थ 'पराविद्या' तथा 'पदार्थ विद्या' का अर्थ 'अपराविद्या' तथा 'पदार्थ', विद्या' का विशेषण होगा। तीसरे नियम में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताया गया है। चौथे में सत्य ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने का निर्देश है और पाँचवें में सत्य को धर्म का पर्याय बताया गया है। महर्षि व्यास ने भी लिखा है--नहि सत्यात करो धर्मः अतः जो सत्यनिष्ठ नहीं है वह स्वामी दयानन्द का अनुयायी होने का दम्भ भले ही कर ले परन्तु इस गौरव का अधिकारी नहीं। महर्षि दयानन्द के विषय में दूसरी स्मरणीय बात यह है कि उन्होंने होने का दावा कभी नहीं किया। 'सत्यार्थ प्रकाश' के दूसरे संस्करण की भूमिका में वह कितनी सरलता से लिखते हैं-- "जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन-पठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष ज्ञान न था, इससे भाषा अशुद्ध बन गयी थी। अब भाषा लिखने और बोलने का अभ्यास हो गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को भाषा-व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" हृदय की कैसी पवित्रता तथा भावना की कैसी ऋजुता है। ऋषि से किसी न पूछा कि आप ज्ञानी हैं यह अज्ञानी? उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया--"जो मैं जानता हूं उसमें ज्ञानी और जो नहीं जानता हूं उसमें अज्ञानी।" अभिमान, दम्भ, दुराग्रह का स्पर्श तक नहीं। कैसा स्वतः स्फूर्त उत्तर है।

ऐसे ऋषि को ऐसे ही अनुयायियों से सन्तोष को सकता है जो इतने सत्यनिष्ठ हों कि स्वयं ऋषि की बात भी प्रमाण चतुष्टय से खण्डित हो जाय तो विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दें।

महर्षि की स्वीकारोक्ति से सिद्ध है कि वह केवल संस्कृत, गुजराती और हिन्दी भाषाएँ जानते थे। अरबी-फारसी का ज्ञान उन्हें नहीं था। इसलिए उन्होंने बड़े-बड़े मौलवियों से कुरान शरीफ का अनुवाद करा के पढ़ा और सत्यार्थ-प्रकाश के १४ वें समुल्लास में उसकी समीक्षा की ।

इस परिप्रेक्ष्य में यही निष्कर्ष निकलता है कि 'हिन्दू' शब्द के विषय में उन्होंने जो कहा और लिखा वह उनके अपने अध्ययन-चिन्तन का फल नहीं हो सकता था। उन्हें किसी अर्बी-फारसीविद ने बताया कि 'हिन्दु' शब्द फारसी का है जिसके अर्थ काला, चोर, डाकू, गुलाम आदि हैं। स्वामी जी के पास इतना अवकांश नहीं था कि उस एक शब्द के विषय में पूर्ण अनुसन्धान करते और फिर कोई निष्कर्ष निकालते। उन्होंने सरल हृदय से उसे मानकर लिख दिया।

धर्मवीर पं. लेखराम जी ने यह सिद्ध करने के लिए एक ट्रैक्ट में उन्होंने अर्बी-फारसी के उद्धरणों की लम्बी सूची दी है जिनमें 'हिन्दू' शब्द गर्हित अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु उन्होंने इस शब्द की ऐतिहासिक, भाषावैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि दृष्टि से न्यायसंगत मीमांसा (परीक्षा) कर अपने अपने मत को सिद्ध नहीं किया।

सम्भवतः वैदिक धर्म के उनके जैसे दीवानें प्रचारक के पास अवकाश भी नहीं था और न उनके समय तक ज्ञान की अनेक शाखाँए विकसित हो पायी थीं। इसलिए उन पर किसी प्रकार की अक्षमता का आरोप या उनकी सत्यनिष्ठा

में लेश मात्र भी शंका करना अक्षम्य अपराध होगा। परन्तु इस समस्या के समाधान हित प्रयास न करना और आँख मूँद कर पक्ष या विपक्ष में कोई धारण बना कर उस पर जमे रहना महर्षि दयानन्द के समम्त क्रान्तिदर्शन और प्रयत्न को पलीता लगाना होगा।

हिन्दू शब्द को विदेशी माननेवालों की युक्तियाँ निम्नलिखित हैः--

१ हिन्दु शब्द वेद या इतर संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता।

२ तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में 'हिन्दू का प्रयोग नहीं किया है प्रत्युत 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया है।

३ विदेशी शासन में आर्य जाति पर अत्याचारों ने उनका मनोबल तोड़ दिया और उस काल की बहुत सी बुराइयों के साथ आर्यों ने हिन्दू नाम को भी ग्रहण कर लिया।

४ यदि 'हिन्दू' 'सिन्धु' का रूपान्तर है तो सिन्धु नहीं तथा सिन्ध प्रान्त हिन्दु क्यों नहीं कहलाये?

इस मीमांसा में सबसे पहले दो प्रश्न हल कर लिये जायें तो सुविधा होगी। पहला, क्या विदेशी साहित्य में हिन्दू शब्द केवल निन्दात्मक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है? दूसरा, क्या हिन्दू शब्द मूलतः विदेशी है?

१ अर्बी-फारसी में अंक गणित को इल्म हिन्द सा कहते हैं अर्थात हिन्दू से आया इल्म (विद्या)। क्या यह अपमानजनक प्रयोग है?

इस शब्द सी तुलना फिरंग रोग से कीजिए। योरोपवासियों के साथ भारत में उपंदश (गर्मी, सिफ्लिस) रोग आया और आयुर्वेद के अर्वाचीन साहित्य तथा जन सामान्य की भाषा में फिरंग रोग चल गया अर्थात् फिरंगियों के साथ आया रोग। यह प्रयोग निश्चित रूप से अपमानमूलक हैं।

२ उमर-बिन-हसत्रभ अर्बी के विख्यात् कवि थे। उनका उपनाम था अब्दुल हिकाम जिसका अर्थ है 'ज्ञान का पिता'। इनकी एक कविता का शीर्षक है-- सियार-उल-ओकुल। इस कविता की तीन द्विपदियाँ नीचे उद्धृत हैः--

(१) बा अह लो लाहा अजूह अरमीमान महादेव ओ मंजिल इलामुद्दीन मिनजुम वा सयत्तरू। अर्थ--वह (महापापी) भी यदि एक बार आस्थापूर्वक की उपासना कर ले तो वह धर्म (सदाचार) के मार्ग में उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकता है।

(२) वा सहाबी के यम फ़ीम कामिल हिन्द योमन।
वा यकुलून लता हज़ान फैन्नक तवज्जरू।।

अर्थ-- हे प्रभो मेरा सारा जीवन ले लो और उसके बदले में केवल एक दिन हिन्द में रहने का सौभाग्य प्रदान करो क्योंकि उस पवित्र भूमि में पहुँचने पर मानव आत्मिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

(३) मयस्सरे अखलाक़ान हसनान कुल्लहुम।

नजूमुन अज़ात सुम्म गाबुल हिन्दू।।

अर्थ-- हिन्दी की तीर्थ यात्रा मात्र से मनुष्य कर्मों का माहात्म्य प्राप्त कर लेता है और आदर्श हिन्दुओं के पवित्र स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। कवि उमर-बिन-हसत्रम को इस्लास स्वीकार न करनें के कारण मार डाला गया था। उनके उपनाम 'अबुल हुकुम' (ज्ञान का पिता) बिगाड़ कर 'अबुल जिहल' (जहालत का पिता) रख दिया गया।

३ दिल्ली स्थिल लक्ष्मी नारायण (बिड़ला) मन्दिर की यज्ञ शाला के दो स्तम्भों पर प्राचीन अर्बी काव्यों के कुछ उद्धरण उत्कीर्ण हैं जिनमें हिन्द' और 'हिन्दू' के प्रति अनन्य व्यक्त किये गये हैं।

४ हजरत मोहम्मद से लगभग २४०० वर्ष पूर्ववर्ती प्रसिद्ध अर्बी कवि लाबी ने एक कविता में निम्नांकित भाव व्यक्त किये हैं-- "हे हिन्दुस्थान की धन्य भूमि! तू समादरणीय है क्योंकि ईश्वर ने तुझ में ही अपने असली ज्ञान का प्रकाश किया है। वेद रूपी ईश्वरीय ज्ञान के ये चारों ग्रन्थ हमारे मानसिक चक्षुओं को एक आकर्षक तथा शीतल ऊषा ज्योति देते हैं। ईश्वर ने हिन्दुस्थान में अपने पैगम्बरों (ऋषियों) के हृदयों में इन चारों वेदों को प्रकाशित किया है उसको तुम अपने जीवन में उतारो तथा उसके अनुसार आचरण भी करो।

५ आर्यसमाज के एक प्रसिद्ध तथा अतिविद्वान संन्यासी थे स्वामी भूमानन्द सरस्वती। उन्होंने अग्रेजी में एक ग्रन्थ लिखा था-- "एक्सेलेशिया डिवायना" (वैदिकी लोकव्यवस्था) जिसका प्रकाशन परोपकारिणी सभा ने किया था। उस ग्रन्थ में ईसा से बहुत पहले से किसी अर्बी काव्य का एक चित्र मुद्रित है जिसकी चार में से एक द्विपदी का अर्थ है-- "हिन्द में ज्ञान के चार दरिया (वेद) बहते हैं।

६ ज़ेन्दावस्ता (छन्दावस्था) पारसियों का चार हजार वर्ष पुराना धर्म-ग्रन्थ है। इसकी एक चतुष्पदी में उल्लेख है कि हिन्द से व्यास नाम के एक ब्राह्मण ईरान आये थे।

उपर्युक्त प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि मूलतः 'हिन्दू' शब्दों के अर्थ गर्हित नहीं थे प्रत्युत अत्यन्त सम्मान एवं श्रद्धायुक्त थे। परन्तु मजहवी जुनून में प्राचीन अर्बी साहित्य नष्ट कर दिया गया तथा परवर्ती साहित्य एवं कोषों में इनके मिथ्या और कलुषित अर्थ रख दिये गये जिससे हिन्दुस्थान पर आक्रमण कर हिन्दुओं को लूटने मारने और विधर्मी बनाने के लिए अरब वासियों को खूब भड़काया जा सके। इसी नीति का अनुसरण प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों ने जर्मनों के प्रति किया और दूसरे महायुद्ध में हिटलर और गोयबिल्स ने अंग्रेजों के प्रति।

### क्या 'हिन्दू' शब्द विदेशी है?

(१) विश्व इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि किसी जन समुदाय ने विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा दिया गया नाम ग्रहण कर लिया हो, विशेषकर अपमानजनक नाम, ज्ञानपूर्वक, बहुतम में रहते हुए और अन्त में आक्रान्ताओं को हरा कर भी। मिश्र का प्राचीन नाम अब भी प्रचलित है यद्यपि वहां का मूल मजहब, भाषा और लिपि, इस्लाम तथा अर्बी में बदल गये।

(२) यह कोई प्रमाण नहीं है कि संस्कृत साहित्य में हिन्दू शब्द नहीं मिलता तो वह विदेशी है। भारत की लोकभाषाओं के लाखों तद्भव और देशज शब्द संस्कृत साहित्य में नहीं मिलते तो क्या वे सबके सब विदेशी हैं? घर, आग, घी, आठ, सात, छह, कान्हा-दुइज, सातैं आदि लाखों शब्द हैं जो संस्कृत में नहीं मिलते प्रत्युत इनके मूल रूप गृह, अग्नि, घृत, अष्ट, सप्त, षट, कृष्ण, द्वितीया, सप्तमी आदि मिलते हैं। इन्हीं की तरह 'हिन्दू' शब्द भी तद्भव है जिसका मूल संस्कृत रूप 'सिन्धु' है।

भाषा-परिर्वतन के सिद्धान्त न जानने के कारण यह भ्रान्ति है। यह निर्विवाद है कि भाषा बदलती है अन्यथा सारे संसार में आज वैदिक भाषा का ही व्यवहार हो रहा होता। साहित्यक भाषा और लोक व्यवहार की भाषा में थोड़ा अन्तर होता है। साहित्य की भाषा अपेक्षाकृत स्थिर होती है जब कि लोक व्यवहार की भाषा अपेक्षाकृत जल्दी बदलती है। जैसे उत्तरध्रुवीय प्रदेश में नदियों के जल की ऊपरी फुट-दो फुट की सतह जमी रहती है और नीचे का जल बहता रहता है। जब नदी के जमे जल सी साहित्य का भाषा तथा लोक व्यवहार की बहते जल सी परिवर्तनशील भाषा में इतनी दूरी आ जाती है कि जन साधारण साहित्य की भाषा को विशेष अध्ययन बिना समझा ही नहीं सकता तो फिर तत्कालीन लोक भाषा में साहित्य-रचना होने लगती है। कालान्तर में साहित्य की नयी भाषा भी जन साधारण के लिए दुर्बोध हो जाती है, तब फिर भाषा के तात्कालिक रूप का साहित्य में प्रयोग होने लगता है, यह क्रम अनन्त है। संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' शब्द इसीलिए नहीं मिलता।

### वैदिक सप्त सिन्धु सूक्त

वेद के 'सप्तसिन्धु सूक्त' में सिन्धु शब्द आता है परन्तु सिन्धु नदी या सिन्धु प्रदेश के अर्थ में नहीं। वह यौगिक तथा पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जिसको सम्यक् रूप से समझने के लिए पं. बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द) कृत 'सप्तसिन्धु सूक्त' लेख पढ़ना चाहिए। कालान्तर में वैदिक विद्या की साधना अत्यन्त अल्पसंख्यक वर्ग में रह गयी और बहुजन समाज उससे वंचित और विमुख हो गया, तो भ्रान्त विद्वानों ने 'सिन्धु सूक्त' का अर्थ नदी परक लगा लिया। आचार्य यास्क के काल में ही वेदों में इतिहास मानने वालों का दल इतना प्रबल हो गया था कि स्वयं आचार्य को उनके मत का उल्लेख निरूक्त में "इति ऐतिहासिकः" लिख कर करने की आवश्यकता अनुभव हुई।

आचार्य यास्क का काल भी चार हजार वर्ष पुराना अवश्य है।

कितनी ही असत्य धारणा हो, यदि विद्वानों की भ्रान्ति अथवा प्रमाद से जनता में फैल जाती है तो उसका उच्छेद तब तक नहीं हो सकता जब तक राजकीय स्तर पर व्यापक तथा सघन प्रयत्न निरन्तर दीर्घ काल तक नहीं किया जाता। यही बात हिन्दू शब्द के अर्थ के साथ हुई, यद्यपि यह शब्द

न विदेशी है और न अपमानजनक। महर्षि दयानन्द ने हिन्दी के लिए आर्य भाषा शब्द को प्रयोग किया परन्तु उपर्युक्त कारण से चल न पाया ।

अस्तु 'स' और 'ह' परस्पर रूपान्तर हो जाता है। इसके उदाहरण देश-विदेश में हैं। संस्कृत सप्त तथा सप्ताह फारसी में हफ्त और हफ्ता बन गये। यही सप्ताह यवन (ग्रीक) में हेप्टार्की बन गया। मास का माह तथा केसरी का केहरी भी इसी परम्परा में हैं। जापान के हिरोशिमा नगर का नाम जापानी में शिरोशिमा है। जापान के प्राचीन शिन्तों धर्म और 'हिन्दू' का मूल एक ही है। प्राचीन चीनी साहित्य में भारत को शिन्तोभूमि लिखा गया है। इसका अंग्रेजो में अनुवाद शिन्तालैण्ड किया गया। सरस्वती का अपभ्रंश हरहवती हुआ। स्नान से नहाना, हनान और हन्नी अस्थि से हड्डी, अस्ति का अहै और है रूप तथा संस्कृत सः का वह भी इसी नियम के अन्तर्गत हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि सिन्धु से हिन्दु बन गया तो सिन्धु प्रान्त तथा सिन्धु नदी का नाम हिन्दु क्यों नहीं हो गया? इन लोगों को यह पता होना चाहिए कि बहुत बार मूल तथा तद्भव रूप साथ-साथ चलते रहते हैं, मूल रूप मूल अर्थ में तथा तद्भव रूप भिन्न अर्थ में। उदाहरण के लिए संस्कृत पत्र के रूप (तद्भव) बने पत्ता, पत्तर और पर्त, संस्कृत चक्र से चक्कर और चक्का, संस्कृत चूर्ण से बने चूरन, चून और चूना, कर्म से करम और काम , दण्ड से डण्डा और डाँड़, कर्तव्य से करतब, रक्षा से राखी, कंकाल से कंगाल, कपाट से किवाड़ और फाटक, हैं और दोनों रूप अपने-अपने अर्थो में चल रहे हैं। इसी प्रकार जनसमुदाय के लिए हिन्दु तद्भव रूप हो गया परन्तु नदी तथा प्रदेश के लिए मूल सिन्धु शब्द ही चलता रहा।

एक विशेष धार्मिक-सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परम्परा में जीवन बिताने भारत के किसी भी भाग का रहने वाला हो हिन्दु कहलायगा परन्तु सिन्धु प्रान्त का निवासी अहिन्दु भी सिन्धी कहलायेगा। इसी अन्तर को स्पष्ट करने के लिए जन-मानस ने हिन्दु तथा सिन्धी दोनों शब्द-रूप सुरक्षित रखे हैं, अलग-अलग अर्थों में।

## रामचरितमानस की युक्ति

अब रही रामचरितमानस में हिन्दु की जगह आर्य शब्द के प्रयोग की युक्ति। साहित्य के अध्येता जानते हैं ऐतिहासिक या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रचे साहित्य में वह शब्दावाली और भाषा का वह रूप प्रयुक्त होता है जिससे उस काल का वातावरण बन सके और उस काल की झलक झाँकी मिल सके। स्वाभावतः वह भाषा-शैली यथा सम्भव उस काल के निकटतम रखी जाती है। दूर दर्शन पर रामायण तथा महाभारत धारावाहिक चले थे। इनमें पत्नियाँ अपने पतियों से आर्यपुत्र कहती हैं, पति पत्नियों से देवि या प्रिये सम्बोधन करते हैं। पुत्र माता से मातश्री माते तथा पिता से पिताश्री कहते हैं। क्या आधुनिक भारत तथा हिन्दी में प्रचलित शब्द और सम्बोधन-मम्मी, डैडी, पापा, डियर, डार्लिग या मिसेज का प्रयोग उपहास्य नहीं हो जाएगा? इसी प्रकार त्रेता युग की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करने के लिए महाकवि तुलसी ने भी रामचरित मानस में आर्य या आरज शब्द का प्रयोग किया है, हिन्दु का नहीं, क्योंकि भगवान् राम के काल में हिन्दु शब्द का जन्म ही नहीं हुआ था।

इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तुलसीदास के समय तक हिन्दु शब्द प्रचलित नहीं हुआ था। प्रत्युत गो. तुलसीदास ने ही कवितावली में हिन्दु शब्द सामान्य रूप से प्रयुक्त किया है। इससे पूर्व सन्त प्रवर जायसी तथा कबीर, गुरूनानक देव तथा सम्भवतः विद्यापति ने भी हिन्दु शब्दका खूब प्रयोग किया था जो तुलसीदास से शताधिक वर्ष पूर्व हुए थे और जब मुगल शासन की स्थापना भी नहीं हुई थी जो अपेक्षाकृत स्थिर तथा दीर्घतम इस्लामी शासन हुआ।

## संभावनाएँ

अब जरा संभावनाओं की दृष्टि से विचार कर लिया जाय। भारत मे अंग्रेजों का शासन लगभग २०० वर्ष रहा। उनके काल में यहाँ छापेखाने खुले जिनसे पत्र-पत्रिकाएँ छपती थीं; डाक-व्यवस्था द्रुतगामी हुई क्योंकि ट्रेने चल निकली थीं, दूरभाष तथा दूरलेख-व्यवस्था भी यहाँ चालू हुई, अंग्रेजी शिक्षा भी एकरूप तथा व्यापक बनी, साथ ही प्रचार का एक और साधन रेडियो भी चालू हो गया था। इसके अतिरिक्त उनकी आंग्लीकरण तथा ईसाईकरण की प्रक्रिया भी धीमी, गहन और मनोवैज्ञानिक थी, हिंस्र नहीं। इसके बावजूद अंग्रेजों के इंडिया, इंडियन आदि शब्द व्यापक नहीं हुए। आज भी गाँव के किसी अशिक्षित वृद्ध से पूछिए तो वह इस देश का नाम हिन्दुस्तान ही बतायगा, इण्डियन नहीं।

इसके विपरीत इस्लामी शासन ने नेपाल, मणिपुर, असम, नगाभूमि (नागालैण्ड), मिजोरम, अरूणांचल, मेघालय तथा त्रिपुरा में पग भी नहीं रखा था, परन्तु इन क्षेत्रों के घोर जंगलों में एकाकी झोंपड़ी में रहने वाला व्यक्ति भी अपने को हिन्दु कहता है। यह कैसे हो गया? तेलुगु में हिन्द महासागर को हिन्दु महासमुद्रम कहते हैं। हिमालय पर्वतमाला की एक पश्चिमोत्तर चोटी का नाम हिन्दुकुश है जो संस्कृत साहित्य में भी उल्लिखित है। हिन्दू शब्द की एतद्देशीयता तथा प्राचीनता इस्लाम से पहले की है, यह सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त प्रमाण पर्याप्त हैं।

**ऐतिहासिक समीक्षा**

आर्यों के निवास के कारण ही इस देश का नाम आर्यावर्त था। आर्य शब्द संस्कृति और गुण वाचक ही था। आर्य जाति का अर्थ था उस संस्कृति तथा गुणों से समृद्ध और अनुप्राणित समाज। अंग्रेजी के 'रेस' शब्द के अर्थ में यह कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ। उस काल में सारी मानव जाति केवल दो वर्गों में बंटी थी-- आर्य और अनार्य। आर्य संस्कृति के विरोधियों के लिए अनार्य, दस्यु, मलेच्छ, राक्षस, असुर दैत्य, दानव आदि शब्द प्रचलित थे। अतः आर्य एवं अनार्य राज्यों का संघर्ष चलता रहता था। उस समय अन्य कोई मत-मतान्तर, सम्प्रदाय या पन्थ आर्यों में नहीं था। अतः आर्य तथा अनार्य शब्द ही पर्याप्त थे।

**वर्तमान स्थिति**-- अब स्थिति बदल गयी है। ये परिवर्तन दो प्रकार के हैं। पहला परिवर्तन यह कि अपने देश में ही वेद, वैदिक धर्म तथा आर्य वैदिक संस्कृति के जानने- मानने वाले अल्पसंख्यक हो गये हैं। सनातन धर्म के नाम पर अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों का जंगल उग आया है और उसी के साथ भारतीय मूल के न जाने कितने अच्छे-बुरे सम्प्रदाय उठ खड़े हुए जिनकी संख्या बढ़ती जा रही है; और उन्हीं के साथ गुरूओं, सन्त-महन्तों तथा आचार्यों की ही नहीं अपितु भगवानों की भीड़ लगने लगी है जिनमें आर्यत्व के लक्षण दुर्लभ हैं।

इस सबके अतिरिक्त विदेशी मजहबों ने भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस प्राचीनतम राष्ट्र का सर्वनाश करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास चालू कर ही रखे हैं जिनका एक परिणाम नये पाकिस्तान के निर्माण की परिस्थितियाँ तथा पूर्वाञ्चल में व्यवहारतः ख्रिस्टस्तान का अस्तित्व है। बंगाल, त्रिपुरा तथा केरल में विदेशों से प्रभावित कम्युनिस्ट प्रभुत्व हैं।

दूसरी ओर अंग्रेजी तथा कांग्रेसी दुष्प्रचार से आर्य शब्द की योगिक्ता तथा वेदों की अपौरूषेयता को लोग भूल ही चुके हैं जिसमें विद्वान भी विश्वास नहीं करते; और आर्यत्व तो यत्र-तत्र विरले व्यक्तियों में बचा है। इस स्थिति में इस राष्ट्र का नाम आर्य तथा देश का नाम आर्यावर्त स्वीकृत करना क्या सम्भव भी होगा? और उसकी उपयोगिता क्या होगी? इससे आर्य शब्द का ही अवमूलन होगा। नाम के इसी आग्रह को नामवाद कहते हैं जिसमें तत्व की उपेक्षा हो जाती है। यदि युक्ति के लिए मान भी लिया जाय कि हिन्दू शब्द गर्हित तथा विदेशी है तो क्या कोई व्यक्ति आर्य शब्द को लेबिल लगानें मात्र से श्रेष्ठ तथा हिन्दू कहने मात्र से निकृष्ट हो जाएगा? क्या स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपय राय, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल तथा सावरकर बन्धु निकृष्ट हो गये क्योंकि वे अपने को हिन्दु कहते थे और 'आर्य' का लेबिन लगाने मात्र से वे लोग श्रेष्ठ हो गये जो विद्या में शून्यवत्. बुद्धि में शून्यवत्, आत्मशक्ति में महाशून्य ही नहीं अपितु अनेक दुर्गुणों तथा दुश्चरित्रता से विभूषित हैं?

**उपासना पद्धति और दर्शन**

उपासना-पद्धति के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक हो गया। उपासना का अर्थ है पास-पास बैठना। पास-पास तभी बैठ सकते हैं जब बैठने वाले एक ही स्थल पर हों। आत्मा तभी परमात्मा के पास बैठ सकता है जब दोनों में कोई व्यवधान न हो। इसी को संयोग, मिलन आदि शब्द व्यक्त करते हैं। देश-काल की दृष्टि से तो सदा ही आत्मा-परमात्मा युक्त हैं, परन्तु ज्ञान और अनुभूति की दृष्टि से वियुक्त रहते है। यह योग-संयोग भी ज्ञान और अनुभूति की दृष्टि से अभीष्ट होता है। उपासना का सम्बन्ध सीधे दर्शन से है। संसार से विरक्ति और मन की निर्विषयता (निष्क्रियता) जब उस चरमावस्था में पहुँच जाती है कि आत्मा को अपने शरीर तथा मन का भी बोध नहीं रहता तब उपासना होती है। यह तभी सम्भव है जब परमात्मा को सर्वव्यापक माना जाय। किसी पर्वत, सागर, लोक, या आसमान पर रहते वाले तत्व से उपासना

नहीं हो सकती। इस दर्शन, धर्म और संस्कृति का अवतरण भारतभूमि पर हुआ। चार्वाक तथा वाम मार्ग के अतिरिक्त भारतीय मूल के सभी सम्प्रदाय इसे मानते हैं। पुनर्जन्म, कर्मफल और मोक्ष इससे जुड़े हैं। यहाँ **आचारः प्रथमो धर्मः** का सिद्धान्त है। ये सारे सिद्धान्त ज्ञान और बुद्धि की कसौटी पर कसे जाते हैं। तदनन्तर साधना से सिद्ध किये जाते हैं।

जो उपासना पद्धति इन सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करती वह इस राष्ट्र का विखण्डन की करती आयी है और आगे भी करेगी। उसे इस राष्ट्र से कुछ लेना-देना भी नहीं है वह तो हिन्दू राष्ट्र को निगलने में लगी है। इसीलिए सावरकर जी ने हिन्दू की परिभाषा की है--

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
पितृभू पुण्यभूश्चैव सवै हिन्दुरिति स्मृतः।।

सिन्धु नदी से समुद्र तक विस्तृत भूमि को जो पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है, वही हिन्दू है। इस परिभाषा में तीन तत्व ध्यान देने योग्य हैः--

१. हिन्दू की श्रद्धा क्षेत्र विशेष में न होकर सारे देश में होनी चाहिए ।

२. इस देश को माता-माताभूमि के साथ-साथ पितृभूमि भी मानना अनिवार्य है। क्योंकि भारत में विदेशी या विदेशी विचारों में दीक्षित ऐसे जनसमुदाय भी हैं जो अपनी पितृ परम्परा विदेशों से जोड़ते हैं और मातृ परम्परा भारत से। उन्हें विदेशी आक्रान्ता अपने पूर्वज और महापुरूष लगते हैं तथा भारत के महापुरूष शत्रु। अतः भारत को पितृभूमि भी मानने की अपेक्षा अनिवार्य और महत्वपूर्ण है; वह मातृभूमि के भाव की पूरक है, विरोधी नहीं।

३. हिन्दू वही हो सकता है जो इस भूमि को मातृ-पितृ भूमि के साथ-साथ पुण्य भूमि (गुरू भूमि) भी मानता हो। जो लोग विदेशों को अपनी पुण्यभूमि मानते हैं वे सच्चाई से कभी इस भूमि तथा यहां की संस्कृति के प्रति निष्ठावान नहीं हो सकते। इसके लिए आवश्यक है कि हिन्दू को जन्म से या स्वीकृति से उसी मत में श्रद्धा-विश्वास हो जिसका जन्म भारत भूमि में हुआ है और निम्नलिखित तत्व उसके प्राण होंः-

(१) ओ३म् (२) कर्मफल का सिद्धान्त (३) पुनर्जन्म का सिद्धान्त (४) यम-नियम (५) वेद से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं से प्रेम (५) महर्षि मनु से लेकर अद्यावधि हिन्दू महापुरूषों में श्रद्धा तथा विदेशी आक्रान्ताओं के प्रति शत्रु भाव (६) गो-भक्ति (७) नारी के प्रति पूज्य भाव।

## राजार्य सभा

महर्षि दयानन्द ने राजार्य सभा का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में किया है। उन्होंने ऋग्वेद के तीसरे मण्डल अड़तीसवें सुक्त के छठे मन्त्र को उद्धृत किया है-**"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि मूषथः सदांसि।।"** और इसका अर्थ लिखा है; "ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरूष मिल के (विदये) सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धि कारक राजा-प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा, अर्थात् विद्यार्य्य सभा, धर्मार्थ-सभा राजार्य सभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या, स्वातन्त्रय, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह व्यवस्था राज्य-संचालन के लिए है। अतः पहली आवश्कता तो राजसत्ता प्राप्त करने की है। स्वामी जी ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए राजार्य सभा बनाने का निर्देश कहां दिया है?

चलिए, बुद्धिपूर्वक सब काम करने चाहिए, अतः इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक संगठन भी चाहिए। इस संगठन का नाम राजार्य सभा की १९ वीं शती में तो चल सकता था जब आर्यसमाज समग्र क्रान्ति का प्रखर अग्रदूत था और समाज के प्रति जनता को श्रद्धा थी। उस समय भारत की कांग्रेस का आरम्भ ही था तथा वह अंग्रेजों के जी हुजूर अग्रेजीदां लोगों का वार्षिक सम्मेलन मात्र थी। यदि उस समय राज्यसत्ता प्राप्ति के लिए राजार्यसभा के नाम से आर्यजन उठे होते तो सब कुछ सम्भव था । परन्तु आज आर्यसमाज जब ह्रासोन्मुख है, उसका यश इतिहास की कथा बन गया है, धर्म के नाम पर पाखण्ड विज्ञान-मनोविज्ञान-दर्शन का बाना पहन का सामने आ गया है, आस्थावान आर्यजन कहीं-कहीं ही दिखाई देते हैं, आज जनता में आर्यसमाज के प्रति आकर्षण नहीं है, है तो केवल आर्यसमाज से शिकायत,

या उसके प्रति उपहास और व्यंग्य, इस स्थिति में राजार्य सभा का सम्बल क्या होगा?

आज आर्यसमाज में रूढ़ियों और पाखण्डों से लड़ने का ही दम-खम नहीं रहा तो राजसत्ता पाने के लिए जो संघर्ष और संकट अनिवार्य है उसे ये आर्यसमाजी कैसे झेल पायेंगे?

एक महत्व की बात यह कि १९ वीं शती में यदि राज्यसभा बनी होती तो सम्भव था कि वहां उपासना सहित आर्यसमाज के सम्पूर्ण दर्शन को लेकर खड़ी हो सकती। परन्तु आज यह कहने का साहस और व्याहारिकता न आर्यसभा में है और न राजार्य सभा में हो सकती है। राजार्यसभा के प्रवक्ता जरा निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करें। अति उत्साह या दुस्साहस से दीर्धकालिक तथा दूरगामी परिणामों वाली योजनाएँ सफल नहीं होतीं। साथ में विवेक और व्यावहारिकता का भी संगम चाहिए। प्रश्न--

१ क्या राजार्य सभा की सदस्यता केवल आर्य समाजियों तक सीमित रहेगी? यदि हां तो कितने प्रतिशत आर्यसमाजी इसमें सम्मिलित हो सकेंगे? यदि अन्-आर्य समाजी भी इसके सदस्य बन सकेंगे तो राजार्य सभा तथा हिन्दू महासभा में नाम के सिवा क्या अन्तर होगा?

२ यदि राजार्यसभा में अन्-आर्यसमाजी हिन्दू बहुमत में आकर सक्रिय हो गये तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों का क्या होगा?

३ क्या राजार्य सभा मत पत्रों से सत्ता प्राप्त करेगी/ मतपत्रों से तो कौन उन्हें मत देंगे? जो आर्यसमाजी कांग्रेस या भाजपा जैसे दलों में जमे हुए हैं राजार्यसभा में आ जायेंगे? यदि हाँ तो कैसे? यदि नहीं तो गैर-आर्य समाजी हिन्दू राजार्यसभा को क्यों मत देंगे?

४ अन्य दलों से जो आर्य समाजी निर्वाचन जीते हैं वे आर्य, राजार्यसभा के नाम घोषणापत्र पर अथवा अन्य दलों के नाम और घोषणापत्र पर? निस्सन्देह वे अन्य दलों के टिकट तथा घोषणापत्र पर ही निर्वाचित हुए थे, तो वे मतदाता और राजार्य सभा के घोषणापत्र पर मतदान क्यों करेंगे?

५ यदि राजार्यसभा केवल वैदिक राजनीति (राजधर्म) और अर्थव्यवस्था का प्रचार करेगी और निर्वाचन नहीं लड़ेगी तो राजार्य सभा की आवश्यकता ही क्या है? आर्यसमाज भी तो यह कार्य कर सकता है।

### निष्कर्ष

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आज के सन्दर्भ में इस देश तथा राष्ट्र की पहचान एवं स्वत्वरक्षा सम्प्रति (फिलहाल) हिन्दुस्थान एवं हिन्दु नामों से ही सुकर है।

इस समीक्षा का अर्थ कोई यदि यह लगाये कि लेखक के मत से आर्य और भारतीय शब्द हिन्दू की अपेक्षा कम गौरवपूर्ण हैं तो यह लेखक के प्रति घोर अन्याय होगा। लेखक का यह अचल विश्वास है कि आर्य शब्द प्राचीनतम, सार्वकालिक और सार्वभौम तथा गुणात्मक है। आज उसे राष्ट्र का नाम देना सम्भव नहीं है बहुत सीमित व्याप्ति का है। भारतीय शब्द भी हिन्दू' की अपेक्षा पुराना है परन्तु आज वह भी ग्राह्य नहीं हो सकता।

आज आवश्यकता है अपेक्षया व्यापक तथा स्वीकृत नाम ग्रहण कर और अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए इस देश में अपना राज्य स्थापित करने की। इसके बाद ही समस्त देश का संस्कार कर नामों के सही समीकरण बन पायेंगे।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | हिन्दी | हिन्दू | हिन्दुस्थान |
| २ | भारती | भातरीय | भारत |
| ३ | आर्य भाषा (संस्कृत) | आर्य | आर्यावर्त |

विकास इसी क्रम में हो सकेगा। महर्षि दयानन्द के स्वप्न-आर्यों के राज्य का यह व्यावहारिक क्रम है जो वीर सावरकर, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द तथा लाला हरदयाल के चिन्तन और संघर्षशील जीवन का सार है।

# 'वहां मंदिर था यह साबित हो चुका है'

-बलदेव राज ग्रोवर

अयोध्या विवाद के संदर्भ में जो नए तथ्य सामने आए हैं वे चार तरह के हैं। पहले ऐतिहासिक दस्तावेज, दूसरे न्यायिक दस्तावेज, तीसरे राजस्व दस्तावेज और चौथे पुरातात्विक दस्तावेज राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मसले पर सामने आए हैं। उन्हें नए तथ्य कहा जा सकता है। मैंने दिसम्बर १६८६ में गोरखपुर की इतिहास कांग्रेस में एक पर्चा पढ़े जाने के बाद इस मामले में दिलचस्पी लेनी शुरू की। चूंकि मामला शैक्षिक दृष्टि से इतिहास के मुझ जैसे विद्यार्थी के लिए बेहद गंभीर था, अतः मैं इस मामले की पूरी खोजबीन के लिए अपने शैक्षिक व्यवसाय के चलते अयोध्या रूक गया। वहां तीन माह रहकर मैंने शोध कार्य किया और मुझे १८६१ के बाद से लेकर अनेक नियमित दस्तावेज मिले। जैसे-जैसे मैं इस खोज की गहराई से छानबीन करता गया, वैसे-वैसे मुझे तथ्य मिलने शुरू हो गए। मैं चाहता था कि असलियत का पता लगे। इसी क्रम में मेरा शोध कार्य आज भी जारी है और जो भी नए दस्तावेज और तथ्य सामने आ रहे हैं, मैं उन्हें उजागर करता जा रहा हूं।

नए तथ्यों पर चर्चा से पहले संक्षेप में यह बताना मैं जरूरी समझाता हूं कि २४ दिसम्बर १६६० को हमने सरकार को सारे दस्तावेज दिए। विश्व हिंदू परिषद ने मुझे अपना विशेषकर प्रतिनिधि नामित किया तो उसके बाद से मैं आगे भी तथ्य पेश करता रहा हूं। ६ जनवरी १६६१ को हमने और भी कागजात पेश किए । तय हुआ था कि २४ -२५ जनवरी को बाबरी कमेटी वाले भी अपने विशेषज्ञ प्रतिनिधि साथ लेकर आएं। लेकिन उन्होंने हमारे कागजातों का कोई जवाब नहीं दिया और निर्धारित समय सीमा का पालन भी नहीं किया बाबरी मस्जिद कमेटी के विशेषज्ञ हमारे द्वारा पेश दस्तावेजों पर बातचीत को ही तैयार नहीं हुए। उसके बाद ला कमेटी की मीटिंग हु ई, लेकिन जब कोई २ जमा २ बराबर पांच सिद्ध करने की जिद पर उतारू हो तो बात क्या बनती, हल कैसे निकलता। लिहाजा बातचीत टूट गई।

नए तथ्यों पर चर्चा करते हुए हमें जन्म साखियों में मिलता है कि १५०५ में गुरू नानक देव जी अयोध्या गए। उस समय मंदिर वहां था और टूटा नहीं था। इस बारे में जन्म साखियों में स्पष्ट वर्णन है।

सवाल उठाए गए हैं कि जहां एक बार मस्जिद बन जाती है तो वह जगह पाताल से आसमान तक अल्लाह के नाम वक्फ हो जाती है और इसलिए वहां से मस्जिद हटाई नहीं जा सकती, इसका उत्तर देना भी जरूरी है क्योंकि पिछली दौर की वार्ताओं में ये बातें काफी प्रमुखता से उठाई गई थीं। लेकिन इस बारे में लिखित में प्रमाण मौजूद है कि मंदिर को मस्जिद में परिवर्तित किए जाने के बाद उसे पुनः मुसलमान आलिमों ने वापस हिन्दुओं को सौंपा है।

विगत १८ सितम्बर को मैं अहमदाबाद से इसके प्रमाण लाया। अहमदाबाद के सारसपुर क्षेत्र में जिसे पहले बीवीपुर के नाम से जाना जाता था। सन् १६२१-२५ के बीच नगर सेठ एवं जौहरी शांतिदास और उनके बड़े भाई वर्धमान ने एक भव्य मंदिर बनवाया था। शांतिदास जैन धर्मावलम्बी थे। इस मंदिर का उल्लेख जैन धर्मग्रन्थों और कुछ विदेशी यात्रियों के लेखों में भी मिलता है। मनतुंगा के नाम से जाने जाने वाले इस मंदिर में भगवान तीर्थकंर की प्रतिमा थी। गुजरात के सबसे बड़े ऐतिहासिक ग्रंथ 'मिरात-ए -अहमदी' खां ने सन् १७६१ के आसपास लिखा था। इस ग्रंथ में मुगलकाल के वे सब सरकारी फरमान भी शामिल हैं क्योंकि खां साहब अहमदाबाद सूबे के दीवान थे और उनके पास सारे सरकारी फरमान आते थे।

१६४५ में शाहजादा औरंगजेब गुजरात का गवर्नर बना। उसने शांतिदास के मंदिर को मस्जिद 'कुवैत-उल-इस्लाम' में परिवर्तित कर दिया। शांतिदास प्रभावशाली और ऊंची पहुंच वाला नगर सेठ था, अतः उसने इसके खिलाफ शाहजहां से अपील की। मुल्ला अब्दुल ने इस पर एक फतवा दिया कि इस्लाम के अनुसार किसी की जमीन छीन कर उस पर मस्जिद बनाना ठीक नहीं है। शाहजादे औरंगजेब ने गलत काम किया है। लिहाजा कुवैत-उल-इस्लाम मस्जिद को हटा दिया जाए और यह मंदिर शांतिदास को वापसदे दिया जाए। इस बीज शायस्तां

खां गुजरात का गवर्नर बन चुका था। यह आदेश ३ जुलाई १६४८ का है। लेकिन आदेश का पालन नहीं हो पाया। दारा शिकोह जब गुजरात का गवर्नर बना तो उसने अपने नायब बाकीर बेग को डिप्टी गवर्नर बनाकर भेजा। शाहजादा दारा शिकोह को राजधानी में ही बने रहने की अनुमति मिल गई थी। नायब बाकीर बेग को गैरत खां उपाधि नाम दिया और उसे तुरन्त ही ३ जुलाई १६४८ के आदेश को क्रियान्वित करने को कहा गया। मन्दिर वापस किया जाने के साथ ही यह भी आदेश दिया गया कि शांतिदास को परेशान न किया जाए। इस पर गुजराज में काफी शोध कार्य हुआ है। ये दस्तावेज शांति दास परिवार के पास हैं जिन्हें मैंने १०-१२ साल पहले भारतीय इतिहास शोध परिषद के निदेशक की हैसियत से देखा था। मैं एक सेमीनार में अहमदाबाद गया था और एक स्थानीय प्रोफेसर श्री मेहता के साथ शांतिदास के परिवार से भी मिला था। एक महान इतिहासकार कौमिसारियत हुए हैं जिन्होंने गुजरात के इतिहास पर काम किया है उनकी पुस्तकों 'गुजरात का इतिहास' और 'फरमान' आदि में भी इसका जिक्र है। उन्होंने भी शाहजहां के वास्तविक फरमानों का अनुवाद अपनी किताबों में किया है और तारीख तथा स्थान आदि भी बहुत प्रामाणिक हैं। ये सब दस्तावेजी सबूत भी हमने सरकार को सौंपे हैं।

अब आएं राजस्व दस्तावेजों और सबूतों पर। वह ढांचा जिसे बावरी मस्जिद कहा जाता है उसके नाम कोई वक्फ नहीं है। कोई जमीन वक्फ में नहीं है। २.७७ एकड़ की जिस जमीन पर विवाद किया जा रहा है और जो अदालत में मामला चल रहा है। उसमें नजूल के १६३१ के दस्तावेजों के आधार पर नक्शे दिए गए है। लेकिन नजूल दस्तावेज तो सिर्फ सरकारी जमीन पर कब्जे आदि की बावत ही होते हैं। राजस्व बंदोबस्ती के दस्तावेज कहीं ज्यादा विश्वासनीय और प्रामाणिक होते हैं १८६१, १८६३ए १६३६-३७ के बंदोबस्ती दस्तावेज उपलब्ध हैं। १६६० में चौथी बंदोबस्ती होनी थी जो किन्हीं कारणोंवश नहीं हो पाई है। अतः १६३६-३७ को ही आधार मानकर चला जा रहा है। हाल में उच्च न्यायालय ने विवादास्पद क्षेत्र के उन दो सर्वेक्षणों को अस्वीकार कर दिया है जो सर्वेक्षण आयुक्त श्री श्रीवास्तव ने लिए थे। अभी एक तक विवादस्पद क्षेत्र का सर्वेक्षण नहीं हो पाया है। लेकिन यह जमीन वक्फ की नहीं है।

१६८६ में जब शिलान्यास आदि का मामला उठा था उस समय राजीव गांधी के शासनकाल मे भी विहिप और शिया मुस्लिम संगठनों के बीच वार्ता हुई थी। सरकार की मध्यस्थता से उस समय. शिया और विहिप के बीच एक समझौता लगभग हो गया था। कि ढांचे को 'जन्म स्थान' से हटाकर सिवान में भी मीर बाकी की मजार के निकट कहीं स्थापित कर दिया जाए। कहा जाता रहा है कि मंदिर तोड़कर मस्जिद बनाने में मीर बाकी की काफी बड़ी भूमिका थी। गृहमंत्री ने १ जनवरी १६८६ को विहिप और शियाओं के बीच होने वाली इस सहमति के प्रपत्र भी तैयार करा दिए थे। शियाओं ने इसके लिए इराक के नजफ स्थित मराज-अल-खोला के जाफरी सम्प्रदाय के आलम-उल-उलेमा अका-इ-अबल कासिम से फतवा भी हासिल कर लिया था कि मस्जिद के ढांचे को यहां से उठाकर सिवान में मीर बाकी के गांव में स्थापित किया जाए। अब कहा नहीं जा सकता कि वे (शिया) अब भी इसके लिए तैयार हैं। उस समय तो वे राजी हो गए थे। वह दस्तावेज भी मेरे पास हैं और मैं उसे शीघ्र ही सरकार को सौंपने वाला हूं। शहाबुद्दीन साहब कहते थे कि यह सिद्ध हो जाए कि मस्जिद-मंदिर तोड़कर बनाई गई है तो मै खुद हथौड़ा लेकर मस्जिद हटा दूंगा। लेकिन जब एक सेमिनार में हमने आमने-सामने प्रमाण रखे तो शहाबुद्दीन साहब तुरन्त मुकर गए कि उन्होंने तो ऐसा कभी कहा ही नहीं। अब वह बैठकों में भाग नहीं ले रहे हैं। उनका कहना है कि बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। फिर मुझे लगता है कि सरकार को शियाओं को भी वार्ता के लिए बुलाना चाहिए। राजीव के समय में भी सुन्नियों ने ही काफी विरोध किया था। वरना बात तो लगभग तय हो ही गई थी। सुन्नी बार-बार टांग अड़ाते हैं जबकि उनका मस्जिद से कोई लेना देना ही नहीं है। अतः यह भी एक तरीका हो सकता है कि बात सिर्फ शियों से की जाए जिनका कि वह ढांचा है।

और नए प्रमाणों में, सूफी साहित्य में मिलते है। बाबरी मस्जिद के बड़े इमाम अब्दुल करीम ने १८८५ के लगभग एक किताब लिखीः हालात -ए-गुमगस्तां अयोध्या वह खुद लिखते हैं कि बाबर के काल में यह मस्जिद मंदिर तोड़कर उसी जगह पर बनाई गई। उनकी किताब का उर्दू समेत अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अली मियां साहब ने भी लिखा है। उनके वालिद ने भी किताब लिखी थी। हिंदोस्तां की मस्जिदें। उसमें भी यही लिखा है। लेकिन यह बात बेहद अफसोसनाक है कि अब इन लेखकों की इन पुस्तकों के नए संस्करणों में से ये सब हिस्से निकाल दिए गए हैं। अब आप अगर बहस के लिए तैयार हैं तो इस तरह तथ्यों को निकाल बाहर क्यों कर रहे हैं? राजस्व दस्तावेजों में भी फरेबदल की कोशिशें की गई हैं। वहां मूल दस्तावेजों में रद्दोबदल की कोशियों की गई हैं। जहां नाम नहीं है वहां बाद

में लिखा गया है।। लेकिन उससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता क्योंकि मूल दस्तावेजों की अनेक प्रतियां तहसील वगैरह में भी उपलब्ध होती हैं और सही प्रतियां मिल सकती हैं। लेकिन यह गंभीर बात है कि दस्तावेजों से खिलवाड़ की कोशिशें भी की गई हैं।

नए सबूतों में सबसे महत्वपूर्ण सबूत है। पुरातात्विक प्रमाण। पहले जो सबूत दिए गए उनमें कसौटी के खम्भों, दरवाजों की चूलों आदि का वर्णन है। शिलालेख तो दो बार टूट चुके हैं। १८५५ में और फिर १९३५ के साम्प्रदायिक दंगों में। लेकिन जो भी मौजूद हैं सबक सामने हैं। इमाम अब्दुल करीम साहब लिखते हैं कि ये शिलालेख पहले भीतर नहीं थे अब बाहर से लाकर लगाए गए हैं। लेकिन प्रमाणों में १८५५ के समय के भी सबूत उपलब्ध हैं। १९७५-१९८० तक रामायण शोध परियोजना पर काम करते हुए प्रसिद्ध पुरातत्वविद बी.बी. लाल ने राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के ढांचे के पश्चिम में दीवार के साथ खुदाई की। उन्होंने नीचे खम्भे देखे हैं। ऊपर कसौटी के खम्भे हैं और जब नीचे आते हैं तो वहां से ईंटों के थड़े हैं जिन पर इन्हें खड़ा किया गया है। ये महज खूबसूरती के लिए नहीं लगाए गए। जैसा विपक्षी कहते हैं कि इन्हें बाहर से लाकर लगाया गया है। मस्जिद में इस तरह के खम्भों, फूलों प्रतिमाओं को कोई मतलब तो है नहीं जो बाहर से ला वहां रख दिया। विरोधियों के पास अब जब विरोध करने को कुछ नहीं है तो प्रोफेसर बी.बी. लाल के उत्खन्न शोध को ही धोखा बताते हैं। विरोधियों ने उत्खनन से सम्बद्ध रोजनामचे, 'डेली डायरी' और पुरातन रजिस्टर आदि की प्रविष्टियां भी देखने की मांग की। हालांकि पुरातत्व विभाग ने अपने १३५ वर्षों में सिवा रिपोर्ट के अपने ये सभी दस्तावेज़ किसी को नहीं दिखाए थे लेकिन जब वे इन्हें भी दिखाने पर राजी हो गए तो देखने वाले ही नहीं आए। बहाने बनाकर मुकर गए।

गत १८ जून को जब खुदाई चल रही थी तो वहां १८-२० मूर्तियां निकली हैं। शिखर और अमलक भी मिले हैं, ऊपर के हिस्से, डोर जांम, पत्थर उसी किस्म का जो मस्जिद में लगा है। कई अन्य प्रतिमाएं भी मिली हैं। उस सबके आधार पर अब हमने रिपोर्ट दी है। इस पर हमने पर्चा छापा है और किताब भी लिखी है। यह भी सरकार को सौंपा गया है। जब इन प्रमाणों को देखने के लिए मुझसे कहा गया तो हम अपने साथ प्रसिद्ध पुरातत्वविदों का एक दल भी अयोध्या ले गए। इसमें भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के पूर्व सह निदेशक यज्ञदत शर्मा भी शामिल थे। इस दल की रिपोर्टें भी जमा कर दी गई है। व्यक्तिगत तौर पर भी रिपोर्टें दी गई हैं। खुदाई उ.प्र. सरकार ने कराई थी। हमने वहां पाया कि वह १६ हजार वर्ग फुट का पुराना ईंटों का बना फर्श हैं। ये ईंटे भी मध्यकाल या उससे पुरानी हो सकती है। दीवारें-पूरब और पश्चिम में पहली बार निकली हैं। नए शोध दस्तावेजों में वह भी दिखाई गई हैं।

दल के अन्य सदस्य मूर्तियां आदि देखकर वापस आ गए थे। मैं वहां २० दिन और रहा और इस दौरान जो अन्य प्रमाण मिले वह भी पर्चे में प्रकाशित किए हैं। उन्हें कभी भी देखा जा सकता है। गत ६ तारीख को भी ४५ पुरातत्वविदों का एक उच्चस्तरीय दल अयोध्या भेजा गया है आगे जांच के लिए। मैंने तो सरकार को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग से राय लेने को और आगे उत्खनन कराने का प्रस्ताव किया था लेकिन सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया इतने पुरातात्विक प्रमाणों के चलते हमारे विरोधियों को अब मान ही लेना चाहिए कि मस्जिद मंदिर तोड़कर ही बनाई गई है। बातचीत से मसला हल हो सकता है।

जहां तक नक्शों का सवाल है १८६१ से १९३७ तक बंदोबस्ती के जो खसरा-खतौनी-खाता के नक्शे हैं। १८६१ के नक्शे के अनुसार भी १६३ नं. प्लाट में केवल मंदिर 'जन्मस्थान' ही दिखाया गया है। आज जिसे सीता रसोई कहते हैं वह भी उस इमारत का हिस्सा था। वह इमारत १८ वीं सदी के अंत में बनी और बीच में सडक अंग्रेजों के समय में बनी है। १८६१ के नक्शे में मस्जिद का चिन्ह मौजूद नहीं है। १७१७ के करीब सवाई राजा जयसिंह का हवाला मिलता है वह मुगलों के बड़े मनसबदार थे। उन्हें अयोध्या जागीर में मिला था। इसका पुराना नाम तब कोट रामचंद्र था। अयोध्या के ८ नक्शे उन्होंने भी तैयार कराए थे। फर्खसियर के समय का भी एक फरमान मिलता है जो कपटद्वारा दस्तावेजों में शामिल है। उसमें भी जन्मस्थान ही दिखाया गया है। रिफिल थेलर के १७६५-६७ के नक्शें और महान इतिहासकार श्रीमती बैवरेज के शोध कार्यों और पुस्तकों में भी इसका जिक्र है। दिलचस्प बात यह है कि वक्फ के सारे दस्तावेजों में 'बाबरी मस्जिद' शब्द का उल्लेख १९ वीं सदी के अंत में मिलना शुरू होता है। स्थान पर चल रहे विवाद में अंग्रेजों से हुए पत्र व्यवहार में भी 'मस्जिद वाकया जन्मस्थान' शब्द ही मिलता है। १८७० के बाद के वक्फ दस्तावेजों में ही इसे 'बाबरी' कहा गया है।

# कर्ण की उदारता

एक बार भगवान श्रीकृष्ण पांडवों के साथ बातचीत कर रहे थे। श्रीकृष्ण उस समय कर्ण की उदारता की बार-बार प्रशंसा कर रहे थे। यह बात अर्जुन को अच्छी नहीं लगी। अर्जुन ने कहा- 'श्यामसुंदर! हमारे बड़े भाई धर्मराजजी से बढ़कर उदार तो कोई है नहीं, फिर आप उनके सामने कर्ण की इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं?'

श्रीकृष्ण ने कहा-- 'यह बात मैं तुम्हें फिर कभी समझा दूँगा। कुछ दिनों पीछे अर्जुन को साथ लेकर भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर के दरवाजे पर ब्राह्मण का वेश बनाकर पहुँचे। उन्होंने धर्मराज से कहा-'हमको एक मन चंदन की सूखी लकड़ी चाहिए। आप कृपा करके मँगा दें।'

उस दिन जोर की वर्षा हो रही थी। कहीं से भी लकड़ी लाने पर वह अवश्य भीग जाती। महाराज युधिष्ठिर ने नगर में अपने सेवक भेजे, किंतु संयोग की बात ऐसी कि कहीं भी चंदन की सूखी लकड़ी सेर-आधा सेर से अधिक नहीं मिली।। युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की--'आज सूखा चंदन नहीं मिल रहा है। आप लोग कोई और वस्तु चाहें तो तुरंत दी जा सकती है' भगवान ने कहा-- सूखा चंदन नहीं मिलता तो न सही। हमें कुछ और नहीं चाहिए। - वहां से अर्जुन को साथ लिए उसी ब्राह्माण के वेश में भगवान कर्ण के यहां पहुंचे। कर्ण ने बड़ी श्रद्धा से उनका स्वागत किया। भगवान ने कहा--'हमें इसी समय एक मन सूखी लकड़ी चाहिए।'

कर्ण ने दोनों ब्राह्मणों को आसन पर बैठाया, उनकी पूजा की। फिर धनुष चढ़ाकर उन्होंने बाण उठाया। बाण मार-मारकर कर्ण ने अपने सुंदर महल के मूल्यवान, किवाड़ चौखटें, पलंग आदि तोड़ डाले और लकड़ियों का ढेर लगा दिया, सब लकड़ियां चंदन की थीं। यह देखकर श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा--'तुमने सूखी लकड़ियों के लिए इतनी मूल्यवान वस्तुएं क्यों नष्ट कीं?'

कर्ण हाथ जोड़कर बोले-'इस समय वर्षा हो रही है। बाहर से लकड़ी मँगाने में देर होगी। आप लोगों को रुकना पड़ेगा। लकड़ी भीग भी जाएगी। ये सब वस्तुएँ तो फिर बन जाएँगी, किंतु मेरे यहां आए अतिथि को निराश होना पड़े या कष्ट हो, तो वह दुःख मेरे हृदय से कभी दूर नहीं होगा।

भगवान ने कर्ण को यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया और वहां से अर्जुन के साथ चले गए। लौटकर अर्जुन से कहा--'अर्जुन ! देखो, धर्मराज युधिष्ठिर के भवन के द्वार, चौखटें भी चंदन की हैं । चंदन की दूसरी वस्तुएँ भी राजभवन में हैं। लेकिन चंदन मांगने पर भी उन वस्तुओं को देने की याद धर्मराज को नहीं आई और सूखी लकड़ी मांगने पर भी कर्ण ने अपने घर की मूल्यवान वस्तुएं तोड़कर लकड़ी दे दी। कर्ण स्वाभाव से उदार है और धर्मराज युधिष्ठिर विचार करके धर्म पर स्थिर रहते हैं।। मैं इसी से कर्ण की प्रशंसा करता हूँ।

इसीलिए अवसर आने पर ही महान त्याग नहीं करना चाहिए, बल्कि छोटे-छोटे अवसरों पर भी त्याग तथा उपकार करने का स्वभाव बना लेना चाहिए, ऐसे व्यक्ति ही महान कार्य करने में सफल होते हैं।

## [ -: चुटकले :- ]

१. रेडीमेड कपड़ों की दुकान पर एक मोटा और एक पतला मित्र पहुंचे, और दुकानदार से कहा, "एक दस साल के बच्चे के लिए कमीज दिखाएं।"
दुकानदार ने दोनों की तरफ देखा और कहा, "लड़का किसका है, आपका या इनका?"

२. आयुषमदान- मम्मी, आप यह चादर कच्चे रंग वाली ले आई।
बबली मदान- नहीं तो, दुकानदार ने गारंटी दी है।
आयुष-कैसी गारंटी?
बबली-कि यह चादर सरकार से ज्यादा चलेगी।

३. मां - बेटा ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे गालियां खानी पड़ें।"
बेटा - "तो मां आज मैं स्कूल नहीं जाऊंगा।"
मां- "क्यों"?
बेटा- "वहां, मास्टर जी की गालियां खानी पड़ती हैं?"

४. 'मेरी याददाश्त, बहुत तेज है। दिल्ली की टैलीफोन डायरेक्टी में छपे नामों के तीन पेज मैं तीन मिनट से भी कम समय में सुना सकता हूं।"
"भाई कमाल है, सुनाना तो।"
"गुप्ता..गुप्ता..गुप्ता..गुप्ता..गुप्ता..गुप्ता..गुप्ता..।"

५. एक चुनाव प्रत्याशी अपने क्षेत्र मेंगए। लोगों में से उन्होंने नरेश मल्हौत्रा से पूछा-"आपके यहां अंधे मतदाता कितने होंगे?"
नरेश मल्होत्रा - "पिछली बार तो सभी थे इस बार एक भी नहीं है।"

१६ नवम्बर जिनका बलिदान दिवस है
जन्म, सन् १८६६ फांसी - १६ नवम्बर सन् १६१५

# तरूण शहीद सराबा

-'क्रांतिकारी'

जो लोग यह सोचते हैं कि 'गदर पार्टी के नेताओं की यह समझ थी कि बिना किसी यूरोपीय देश जर्मनी आदि की सहायता के भारत को आजाद नहीं कराया जा सकता - वे भ्रम में हैं। वस्तुतः, गदर पार्टी के लाला हरदयाल जैसे महान नेता यह कभी नहीं सोचते थे। सेन फ्रान्सिस्को में गदर पार्टी का उन दिनों मुख्यालय 'युगान्तर-आश्रम' था, उस आश्रम में हरदयाल जी ने पंजाब का एक बृहत् मानचित्र टांग रखा था दीवार पर। उस मानचित्र में कश्मीर प्रान्त में मोटे-मोटे सुअक्षरों में अंकित था "कश्मीर में सन् १६२० में गणतंत्री राज्य व्यवस्था"। एक साथी ने हरदयाल जी से प्रश्न किया- "मानचित्र के कश्मीर में यह जो आप ने वाक्य लिखा, उसका क्या रहस्य है?"

लाला हरदयाल जी ने उसे जो समझाया उस रोज, वह जहां तक भारत की स्वतन्त्रता और अखण्डता की सुरक्षा का सवाल है - इस सवाल से जुड़े राज-नेताओं तथा समीक्षकों को उन शब्दों का वजन आत्मसात करना आवश्यक होगा। उन्होंने कहा था - "देखो, हम पूरे एशिया की आजादी की कल्पना कर रहे हैं- और यह समझते हैं कि सर्वप्रथम चीन देश स्वाधीन होगा - उस देश (चीन) की मदद से हम लोग कश्मीर को आजाद कर लेंगे - उस समय (सन् १६२०) कश्मीर में हम भारत की व्यवस्था लायेंगे। यद्यपि इसके पूर्व हम यह यह भी सोचते थे कि प्रथम चीन के रास्ते हम उत्तरी हिन्दुस्तान के हिस्सों को स्वाधीन करते हुए अपना संग्राम शुरू करें-उसके साथ ही आगे बढ़ते हुए पूरा देश स्वाधीन कर लें परन्तु अब यही सोचा है कि कश्मीर को आजाद करके उसी के रास्ते हम भारत के अन्य भू-भाग स्वाधीन करेंगे।" भले यह तथ्य समीक्षकों की दृष्टि में कम आया हो परन्तु यह एक सत्य उजागर करता है कि उस समय जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा हुआ था- उसका लाभ उठाकर भारतीय क्रांतिकारी यही एक मात्र योजना नहीं बना सके थे कि जर्मनी को अपने पक्ष में करके हम उसके सामरिक साधनों का उपयोग भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए करें वरन् उनकी दृष्टि योरोप से हटकर उक्त दृष्टिकोण से भी योजना बनाती रही थी। पश्चात् यह तय हुआ कि 'गदर पार्टी के लोग बड़ी संख्या में भारत जाकर वहां जो छावनियों में भारतीय पलटने हैं- उन्हें क्रांति के लिए तैयार करें। उन पलटनों में उस समय जो प्रबल विरोध भावना ब्रिटिश शासकों की नीति को लेकर व्याप्त थी। वह यह थी कि उस समय सरदार करतार सिंह सराबा १८ साल के थे, पूरे युवक भी नहीं थे अभी किशोरावस्था और तरूणाई के संधि-स्थल पर खडे थे। उसी उम्र में वे 'गदर पार्टी में सक्रिय थे। 'गदर' अखबार जब हरदयाल जी ने शुरू किया तो करतार सिह ने उसमें बहुत काम किया। वे थे 'गदर' के छपाई विभाग में तथा हाथ से चलने वाली छापाखाने की मशीन (हैण्ड-प्रेस चलाते चलाते वे जब थक जाते थे, उस समय उनके मुंह से पंजाबी की ये पंक्तियां मुखरित हो उठती थीं:-

"देश-सेवा दे जिदड़िये बड़ी औखी गल्ला करनियां ढेर सुखल्लियां वे। जिन्हां इस सेवा-विच्च पैर पाया, उन्हां लक्ख मुसीबतां झल्लियां वे।।"

"देश-सेवा का जीवन बड़ा कठिन है। इसमें संकटों का ही सामना है। जिसने इस रास्ते पर पैर रखा, उसे लाखों मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं।" लाला हरदयाल के बाद 'गदर' के संपादकीय पं. रामचंद्रभारद्वाज लिखते थे। सन् १८६६ में ये पंजाब ग्राम में जन्में। ४ साल बाद इनकी भी जन्म-शती आयेगी पर कौन तब इस महान शहीद की स्मृति में समारोह करेगा।

इनके पितामह ने इन्हें पाला। पिता सरदार मंगल सिह इनके बाल्यकाल में ही काल-कवलित हो चुके थे। इनके एक काका पुलिस में सबइंस्पेक्टर थे तत्कालीन संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश में। एक काका वन-विभाग में उड़ीसा में अधिकारी-पद पर थे। इनकी शिक्षा सराबा गांव, फिर लुधियाना के 'खालसा

हाई स्कूल' में हुई। बड़े चपल थे। खेल में आगे, छात्रों में नेता, दसवां तथा आगे का अध्ययन-क्रम इनका उड़ीसा में जारी रहा। वहां उन्होंने अन्य साहित्य भी पढ़ा। सन् १६११ चल रहा था। स्वदेशी आंदोलन का समां बंधा था देश में। ये सन् १६१२ में अमेरिका चले। सेन-फ्रान्सिस को बन्दरगाह पर इमिग्रेशन-अधिकारी ने रोका इन्हें पूछा :-

"क्यों आये"?

'शिक्षा पाने'

'हिन्दुस्तान में भी तो पढ़ सकते थे?'

'वहां पढ़ लिया-अब केलीफोर्नियां यूनिवर्सिटी में पढ़ना चाहूंगा।"

'लेकिन हम तुम्हें वापस लौटा दें तो?'

'यह तो आप लोगों का सरासर जुल्म होगा। छात्रों के लिए ऐसी बाधाएं खड़ी करने से दुनिया कैसे प्रगति करेगी? क्या पता कि मैं यहां शिक्षित होकर संसार का क्या उपकार कर जाऊं! न पढ़ने दिया गया यहां तो दुनियां मुझसे मिलने वाली उस उपलब्धि से हाथ धो बैठेगी।"

इस जवाब से अमेरिकन अफसर पर असर पड़ा फिर न रोका, लेकिन जैसे-जैसे दिन बीते, करतार यहां भारत की गुलामी के लिए तिरस्कार-अपमान सहते-सहते व्यग्र हो उठे। जहां देखो, वहीं 'डैम हिन्दू' का सम्बोधन! फलतः भगवान सिंह आदि के साथ आप 'गदर पार्टी में आ गये। देश को स्वतंत्र कराने की धुन लगी। उस समय बाबा गुरदत्त सिंह कोबे (जापान) में थे, करतार अपने एक भारतीय क्रांतिकारी गुप्ता तथा अमरीकन क्रांतिकारी जैक के साथ कोबे गये विमान से। बाबा गुरूदत्तसिंह से भेट-वार्ता की फिर अमेरिका वापस आ गये। उस समय अमेरिका-कनाडा में एक फिजा बनी थी भारतीय प्रवासियों में और वे गाते रहते थे कि-

"चलो चल्लिये देश नूं युद्ध करन।

एहो आखिरी वचन फरमान हो गये।"

कि "चलो देश के लिए संग्राम करने चल पड़ो- आखिरी आदेश हो चुका" उस समय सिख प्रवासी कनाडा में थे। कोई १२-१३ हजार भारतीय प्रवासी अमेरिका में भी थे। अमेरिका सरकार चाहती थी कि अधिकाधिक श्रमिक भारत से वहां आयें पर जो और भी श्रमिक इनके संगठन में थे, वे नहीं चाहते थे। विरोध करते थे कारण वे भारतीय श्रमिकों के प्रतिस्पर्धी बन गये थे। उधर उन प्रवासियों के बीच पं. परमानन्द आदि के भाषण होते कि "तुम जो कनाडा-अमेरिका-फ्रांस की भूमि पर आये हो तो मत भूलो कि तुम यहांभारत से अकेले ही नहीं आये बल्कि तुम्हारे साथ गुरू गोबिन्दसिंह की भावना आयी है, उनकी खड्ग की शान तुम्हारे हाथ हैं। वीर शिवाजी की वीरता, तुम्हारे हाथ है। तुम्हें उन वीर पूर्वजों की आन रखनी होगी। क्रांति के लिए कमर कस लो।" लेकिन ये लोग यह न जान पाये कि अंग्रेजों ने किस तरह अपने भेदिये इनके पीछे जासूसी के लिए लगा रखे थे। इन सिखों के साथ एक ही मुसलमान भारत आया था उस जहाज से। उस का नाम था 'नवाब खां। भाई परमानंद ने कहा है कि यह नवाब अमेरिका में भी गदर पार्टी की जासूसी अंग्रेजों के लिए बराबर करता रहा था और फिर जब हजारों सिख पंजाब चले क्रांति करने तो यह नवाब खां भी उनके साथ लग गया। पंजाब में इसका आना था कि इसने सभी भेद अंग्रेजों को बता दिये। नतीजा यह हुआ कि जो सिख या गैर-सिख उन क्रांतिकारी जत्थों के अगुवा थे उनके नाम पते-गांव आदि पुलिस को पहले ही मालूम हो चुके थे। पुलिस ने उनकी निगरानी प्रारम्भ कर दी। 'रौलट-कमेटी की रिपोर्ट' में भी यह सब ब्यौरा आया है। करतार ने एक बार चाहा कि फिर विदेश निकल जायें सीमा तक आये भी पर सोचा "बनी सिर शेरा दे- की जाणां भज्ज के!" करतार में एक और हुनर था - वे विमान भली प्रकार चला सकते थे, कारण वे न्यूयार्क की एक विमान-कम्पनी में काम करते थे कुछ महीनों वे खुद जहाज चलाकर कोबे (जापान) गये थे। पश्चात् 'निपिन मारू' जापानी जहाजसे १६ सितंबर सन् १६१४ को वे कोलम्बो होकर पंजाब चले गये। लुधियाना में इनसे शचीन्द्र सान्याल मिल गये। जालन्धर के पास एक बाग में बैठक हुई- जिसमें शचीन्द्र सान्याल, पृथ्वी सिंह, अमर सिंह, करतार सिंह, रामशरण दास तलवार तथा पं. राम रक्खा शामिल थे। तब तक ६ हजार सिख कनाडा से - उत्तरी अमरीका आदि से भारत लौट आये थे। अमरीका से पिंगले केहर सिंह -रंगा सिंह - जगत सिंह और जीवन सिंह आदि विप्लवी तथा शंघाई से डा. मथुरासिंह आ चुके थे। करतार सिंह की शचीन दा से एक ही रट लगी थी- 'रासू दा पंजाब कब आयेंगे?" करतार ने तूफानी दौरे किये। एक-एक दिन में ४०-५० मील तक

साईकिल चलाया करते । गांवों-पलटनों के सभी - जगह दौड़ते रहते। कभी फिरोजपुर की फौजी छावनी में घुस रहे होते तो कभी लाहौर - कालेज के छात्रों के बीच नजर आते। पुलिस पीछे लग गई। एक दिन एक गांव में पुलिस को खबर हुई कि करतार यहीं है। गांव पर घेरा पड़ा। करतार तब एक दूसरे गांव में थे पास ही साइकिल चला कर घिरे गांव में आये। पुलिस इनका हुलिया पहचानती न थी। आराम से फिर वहां से लौट चले ऐसी निर्भयता।

**'धनापूर्ति हेतू 'मनी एक्शन'**

पैसे की कमी पड़ी तो सोचा, एक अंग्रेज-परस्त आदमी है, धनी है - उसके यहाँ 'मनी एक्शन' किया जाये। इस डाके से भाई परमानन्द जैसे विप्लवी नेता का कोई सम्बन्ध या सहमति न थी परन्तु उत्साह के आधिक्य में करतार सिंह ने कह दिया कि "भाई परमानन्द की इस डाके की योजना में सहमति है।" कारण, करतार सिंह से ही कहा गया था कि 'तुम भाई परमानन्द से भी अनुमति ले आओ।' ये उनके पास गये तो नहीं- क्योंकि जाने से वे शायद अनुमति न देते, अतः आपने भाई परमानन्द से बिना पूछे ही कह दिया "भाई जी भी सहमत हैं।" भाई परमानन्द का उस वक्त लाहौर में दवाखाना था। वे अमेरिका से लौटे थे। फलतः, हिसार जिले के पीपी गांव में १७ दिसम्बर को इन लोगों ने डाका डाला जिसमें २२ हजार रूपये हाथ लगे। इसी समय कुछ डाक-गाड़ियां लूटी गईं। रेलों को पटरी से उतारने की भी कोशिशें हुईं। २४-२५ दिसंबर को जालंधर जिले के फरला व करनाम में दो डाके पड़े। उन्हीं रातों में फिरोजपुर जिले में भी दो डाके पड़े। गुरदासपुर जिले के चौरियान २७ दिसंबर को, होशियारपुर जिले में १ जनवरी को तथा जालंधर जिले में भी ४ जनवरी को एक और डाका पड़ा। एक में चौकीदार मारा गया। १६ जनवरी को गोविन्दपुर (गुरदासपुर) में कपूरथला क्षेत्र में २१ जनवरी को डाके पड़े। "रौलट कमेटी की रिपोर्ट में इन डाकों का ब्यौरा है पर यह भी टिप्पणी की है कि "ये राजनीतिक डाके पुलिस साबित नहीं कर सकी।"

पश्चात्- २३ जनवरी को सहनेवल (लुधियाना) २७ जनवरी को मनसूरनगांव (लुधियानाा २६ जनवरी को मालेर कोटला के झानीर गांव तथा २ फरवरी को अमृतसर के चन्ना गांव में डाके पड़े। रौलट कमेटी-रिपोर्ट में ये सब डाके दर्ज हैं। तफसील के साथ ३ फरवरी को रब्बो गांव (लुधियाना) के डाके का नेतृत्व करतार सिंह सराबा ने ही किया। आदमी मालदार ही था पर डाके के समय एक साथी ने एक लड़की के हाथ का स्वर्णा-भूषण उतारना चाहा तो करतार गरज उठे थे "खबरदार, लड़की को हाथ न लगाना, हम क्या स्त्रियों के जेवर लूटते हैं?" कहते वक्त करतार का रिवाल्वर साथी की ओर उठ गया था अनजाने। यह दृश्य देखकर लड़की की मां ने करतार को बहुत असीसा कहा- "बेटा! ऐसे धर्मात्मा लड़के होकर तुम कैसे इस काम में आ गये?" करतार ने कहा-"माँ, हम डाकू नहीं। देश के लिए पैसा चाहिए।" मां ने कहा - "बेटा, इस लड़की की शादी हो रही है, बहुत धन खर्च होगा उसमें।" करतार ने वहां लूटे गये धन की गठरी उस मां के आगे रख दी। कहा--"जो चाहे रख लो।" मां भी एक ही थी--थोड़ा रूपिया निकाला जरूर, पर बाकी सब सहित आशीर्वाद के करतार को ही सौंप दिया। कहा था उसने- "बेटा! तुम्हारा बहुत नाम होगा।" ऐसे भावुक विप्लवी थे करतार! परन्तु विप्लवी जीवन बड़ा कठोर होता है, इसलिए मैंने कुछ डाके रौलट-कमेटी-रिपोर्ट से गिनाये कि हम भ्रम में रहें- यह न समझ लें कि यह रास्ता फूल-मालाएं पहनने का है या सुख-सुविधा का। इसे २१ जनवरी तक बीच में भी ६,७,१४,१८ जनवरी मिलाकर ६ बार रेल-पटरियों से गाड़ियां उतारने की चेष्टा हुई, नहीं कहा जा सकता कि रौलट-रिपोर्ट का यह ब्यौरा कहां तक सच है!

**देश हित सर्वस्व न्योछावर**

फिरोजपुर छावनी में जो देसी पलटन थी-- उसके हवलदार से करतार सिंह क्रांति की निश्चित तिथि पर १६ फरवरी पर जाकर मिले। करतार के साथ उस वक्त ८०- साथी और भी थे। पर कृपाल सिंह के मुखबिरी कर देने से उस हवलदार ने बताया "अब कुछ भी नहीं हो सकता।" करतार हताश हृदय वापस लौटे। रासूदा के पास गये, वे तब

लाहौर में ही थे। देखा, वे भी बड़ी निराश मुद्रा में खाट पर मौन पड़े हैं-- करतार दूसरी ओर मुंह फेरकर वहीं पड़ रहे। आशाओं पर तुषारापात हो चुका था। करतार पर स्वयं भगत सिंह ने 'चादं' के फांसी अंक में लिखा था। वे करतार को अपना आदर्श मानते थे, उनके जीवन से प्रेरित थे भगतसिंह। मुखबिर कृपालसिंह डी.वाई.एस.पी. हयातखां का नियुक्त किया हुआ आदमी था भेदिये के रूप में जो क्रांतिकारियों में क्रांतिकारी समझ लिया गया। यह २३ वें रिसाले के क्रांतिकारी सैनिक बलवन्त सिंह का निकट सम्बन्धी ही था। कृपाल ने ही हयालखां को बताया कि क्रांतिकारी मूलासिंह का छद्म नाम 'पंजाब सिंह' है। चब्बे गांव के डाके से हयात खां चौकन्ना था कि ये डाके अमेरिका से आये सिख ही डाल रहे हैं। चब्बे गांव में डाका डालते समय क्रांतिकारी कालासिंह नाम का एक बढ़ई भी साथ ले गये कि यही सन्दूकें खोलेगा।

कालासिंह मौके पर ही पकड़ा गया तो उसने कुछ नाम कबूल किये हयात खां से। उसने मूलासिंह का भी नाम बताग्ग जो करतार का साथी था। इस स्थिति में फिर छावनियों में १६ फरवरी को गोरे सैनिकों को कैसे-कौन गोली मार कर खत्म करता! सरकार सजग हो गई थी। वस्तुतः चब्बे गांव के डाके के बाद ही हयातखां (डी.वाई. एस.पी.) ने जेलदार बेलासिंह को बुला भेजा। उस दिन ७ फरवरी थी। हयात खां ने कहा कि- "हमें ऐसा आदमी दो जो सिख ही हो और अमरीका-कनाडा- जापान वगैरह से लौटे सिखों में दोस्ताना ताल्लुक बना सके।" तब ६ फरवरी को बेलासिंह जिस पुरूष को ले गया हयात खां के पास, वही कृपाल सिंह के नाम से कलंकित और कुख्यात हुआ। काश! यह ११ दिन और न आ पाता खां के पास मुखबिर बनने तो कौन कह सकता है कि २१ फरवरी को भारत में गोरों की क्या हालत होती! फांसी की सजा करतार को सन् १८६४ की १३ सितंबर को सुनाई गई थी। करतार जब फांसी की कोठरी में पहुंच गये और भाई परमानन्द भी वहीं आ गये तो भाई जी ने एक दिन पूछा उनके कि "करतार! तुमने भारत लौट कर क्या पाया? सड़ रहे हो न कैद में! अमेरिका में तो तुम इससे कहीं अच्छे थे?" तब जो करतार ने कहा था, वह याद रखने लायक है। बोला। - "भाई जी ! अमेरिका में अपने देशवासियों का अपमान-तिरसकार देखते-देखते मैं अपनी जिन्दगी और जवानी को लानत देने लगा था। सोचता था, इससे तो मर जाना बेहतर।

वे अपमानास्पद व्यंग्य सुन कर दिल जला करता था रात-दिन। सच पूछिये तो मेरे दिल में मरने की तमन्ना पैदा हो गई थी वहीं से। और फिर मरने आ पहुंचा यहां अब मैं खुश हूं-कोई गम नहीं।" फांसी के वक्त इनका १० पौंड वजन बढ़ गया था। और पं. परमानन्द ने मुझे बताया था कि फैसले के दिन करतार सिंह ने ये पंक्तियां गाईं थीं और हम लोगों ने उन्हें दोहराया था कि--

"मुसीबत आ, कयामत आ, कहां जंजीरे–जिन्दां हैं?
यहां तैयार बैठे हैं गरीबाने वतन पहले।।
हमें दुःख भोगना, लेकिन हम नस्ल सुख पाये।
ये दिल में ठान लो अपने ऐ हिन्दी मर्द जन पहले।।
उन्हीं के सिर बंधे सेहरा, उन्हीं पर ताजे-कुरबानी।
जिन्होंने फाड़कर कपड़े, रखा सिर पर कफन पहले।।"

इन पंक्तियों में जो करतार को प्रिय थीं। उनके बलिदानी मानस का परिचय प्राप्त है। करतार ने बम बनाना भी सीखा था टुण्डी लाट (हरनाम सिंह) और पृथ्वी सिंह के साथ बकौल पं. परमानन्द के "हमने यह विदा गीत गाकर १७ नवम्बर १६१४ को करतार को विदाई दी थी फांसी के समय कि-

"फख्र है भारत को, ऐ करतार! तू जाता है आज।
'जगत' और 'पिंगले' को भी, तू साथ ले जाता है आज।"

वे सरगोधा के जिले में चक नं. ५ में क्रांति-प्रचार करते गिरफ्तार हुए थे। पकड़ने वाला पुलिस एम. पी. था टामकिन। उससे ये बोले, "अब पकड़ा है तो कुछ खिलाओ भी यार!" कहते थे-- जब फांसी पर जांऊ तो मुझे एक खिताब देना, 'बागी'। उन्होंने फांसी की कोठरी में बैठकर ये पंक्तियां फांसी पाने के दिन लिखी थीं कि

"मैं हिन्दी ठेठ हिन्दी, खून हिन्दी जात हिन्दी है
यही मजहब, यही फिरका, यही है खानदां मेरा।

# मेरे गांव को क्या हो गया है!

**प्रस्तुत लेख में श्री रामनारायण उपाध्याय ने शब्द चित्र शैली में गांव-देहात के रहन-सहन तथा अतीत से वर्तमान तक गांवों के क्रमिक विकास का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। साथ ही आजादी के बाद गांवों के विकास के नाम पर जो खर्च किया जा रहा है, उससे गांवों का विकास कम, विनाश अधिक हुआ है।**

जब भी शहर से मेरा मन ऊब जाता है, मेरा मन गांव में जाने के लिए ललक उठता है। बिना किसी पूर्व तैयारी के मैं वहां पहुंच भी जाता हूं। लेकिन पूरे एक दिन भी वहां टिक नहीं पाता और उतरते अंधेरे में, हारे हुए सैनिक की तरह दुबारा शहर लौट आता हूं।

आखिर क्या वजह है कि जिस गांव में मेरा जन्म हुआ जहां की माटी में खेल कर मैं बड़ा हुआ, जहां मेरी शिक्षा-दीक्षा हुई, जिस गांव की सेवा में गांधी के कहने से मैंने अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ चालीस वर्ष होम दिए, वह गांव मुझे बांध नहीं पाता?

आज भी गांव में कुछ लोग हैं, जिनके साथ मैं खेला पढ़ा और बड़ा हुआ। जब भी गांव में पहुंचता हूं, वे ललक कर मिलने के लिए दौड़े आते हैं। आज भी गांव में कुछ ऐसे झोंपड़े हैं, जहां पहुंचने पर वहां के लोग मेरे लिए खटिया या गुदड़ी ही नहीं, अपना हृदय बिछाकर रख देते हैं। आज भी गांव से लगकर एक नदी बहती है जिसके पानी में पांव डालकर मैंने सात समुंदर और नौखंड पृथ्वी की यात्रा की है। आज भी गांव में वह चौपाल है, जहां सांझ पड़े गांव के बड़े बुज़ुर्ग अपनी-अपनी खटिया लेकर आते और अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग अलापने लगते थे। आज भी गांव में मेरा अपना वह घर है, जहां बैठकर मैंने अपनी उत्तम साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि की। क्या वजह है कि जिस गांव ने मुझे अपनी तमाम सुविधाओं के बाद भी बांधे रखा। वह विकास के नाम पर किए जाने वाले अपने कार्य कलापों से भी अब मुझे बांध नहीं पाता।

चालीस साल पहले के इस गांव में जाएं तो पहले इस गांव में पहुंचने के लिए कोई पक्की सड़क नहीं थी। शहर आने के लिए सात मील कच्ची सड़क से होकर रेलवे स्टेशन तक पहुंचना होता था। वहां से छुक-छुक चलने वाली इंदौर की छोटी लाइन से दो घंटे में शहर पहुंच पाते थे। जब भी शहर से लौटना होता था रेलवे स्टेशन पर मेरा गाड़ीवान सीकचों में झांकते मेरी प्रतीक्षा करता मिलता था। बरसात की अंधेरी रातों में हाथ में लालटेन लेकर मैंने कई बार कीचड़ कादे से भरे इस रास्ते को अपनी नंगी पगतलियों से पार किया है।

गांव में सातवें दिन डाक आने की व्यवस्था थी। अपनी डाक जल्दी पाने की धुन में मैं चिलचिलाती धूप में, सात मील दूर पोस्ट आफिस पहुंचता और वहां से अपनी डाक स्वयं लाने में स्वर्ग का सुख जैसा आनन्द अनुभव करता था। शिक्षा से दूर उस गांव में मैंने बड़े-बूढ़ों के लिए एक रात्रि शाला भी चलाई थी और एक ऐसे वाचनालय की स्थापना की थी जिसमें कानपुर से 'प्रताप', पटना से 'जनता', खंडवा से 'कश्मरी', दिल्ली से 'जीवन साहित्य', अहमदाबाद से 'हरिजन सेवक', बंबई से 'हिंदुस्तान' और कलकत्ता से 'विश्वमित्र' मंगाया जाता था। मेरी इस लाइब्रेरी को देखकर गुलाम भारत के एक डिप्टी कमिश्नर ने कहा था-- अगर गांव का सर्वांगीण विकास करना है तो इसी रास्ते से किया जा सकता है। और उन्होंने लायब्रेरी के लिए पांच रूपए की भेंट भी दी थी। जिससे हमने हाथ चरखा खरीदा और कलेक्टर के चंदे से खरीदे गए चरखे के चेक को हमने विदेशी शासन को बदलने के लिए 'सुदर्शन' की तरह घुमाया था।

गांव में एक मंदिर था। जहां भगवान के सामने बैठकर पंच किसी अपराधी को दंड देने और ईमानदार को न्याय दिलाने का काम करता था। गांव का मुख्य धंधा खेती थी और उसके सहारे कई उद्योग धंधे चलते थे। कुम्हार घर बनाने के लिए ईंटें देता, घर छाने की खपरैल बनाता, ठंडे पानी के लिए मिट्टी का घड़ा रखा जाता और प्रकाश के लिए

माटी के दिए सजाता था। पुजारिन आती और नए कपास की मोनी से बनी बाती रख जाती और तेली के द्वारा निकाले गए नई तिल्ली के तेल से जगर-मगर दिया क्या जलता मानों सारे गांव में स्नेह का प्रकाश छा जाता था।

तब रूपए का चलन नहीं हुआ था। चीजों की अदला-बदली से लोग अपना काम चलाते थे। ज्वार देकर मजदूरों की मजदूरी चुकाई जाती और कपास बेचकर कपड़ा और बाकी जरूरी चीज खरीद ली जाती थी। तब अनाज की अदला-बदली में जरूरी खाद्य सामग्री दिलाने की क्षमता होती थी और कपास जैसी व्यापारी फसल से शादी ब्याह, दान-पुन, तीर्थ व्रत जैसे सामाजिक कार्य संपन्न कर लिए जाते थे। तब कर्ज बैंक वालों का टारगेट पूरा करने और फोटो उतरवाने की नहीं वरन् अपनी जरूरत पूरी करने के लिए, छिपा कर लेने की वस्तु थी और उसे चुकाना आदमी अपना दायित्व मानता था।

तब निश्चित सालाना गल्ला देने की एवज में लुहार खेत में जाकर खेतों के हल बखर आदि औजार सुधार जाता था। चमार, चरस, जूते आदि बनाकर देता, नाई घर आकर हजामत बनाता और कोटवार पूरे वर्ष गांव की चौकीदारी करता था।

तब गांव के लोग एक परिवार की तरह रहते थे। एक का काका या मामा दूसरे द्वारा भी उसी रिश्ते से पहचाना जाता था। तब गांव की आंख में शरम थी और वह धरम का मरम जानता था।

आजादी आने के बाद गांव के आदमी ने भी अपने गांव को संवारने का सपना देखा और उसने स्वराज को अपने यहां लाने के लिए कमर कस ली। उसने कुदाली उठाई और उबड़-खाबड़ रास्ते को साफ समतल बनाया। उसने स्वेच्छा से अपने घर के सामने के औटालों को तोड़ा और गांव में स्कूल और अस्पताल लाने के लिए स्वेच्छा से अपना श्रमदान दिया। तब उसमें इतनी क्षमता थी कि अगर कोई अफसर सार्वजनिक कार्यों में भ्रष्टाचार करता तो वह उसे ठिकाने लगाने की ताकत रखता था।

आज गांव को शहर से जोड़ने वाली जो सड़क दिखाई दे रही है और जिस पर दिन में चार-चार बसें दौड़ रही हैं। इस सड़क निर्माण का श्रम भी उसी की बलिष्ट भुजाओं का है।

लेकिन सड़क के बनते ही नेताओं और अफसरों की जीपें उस पर दौड़ने लगीं और बेचारा किसान गाली खाकर अपनी बैलगाड़ी को पटरी से नीचे उतारने को बाध्य हुआ। गांव में पंचायत बनी और पंचायत में से पार्टी बाजी का जन्म हुआ। जो बिना मेहनत के पांच पैसे भी लेना पाप समझता था उसे आडीटर्स ने वाउचर लगाकर मिलकर पैसा खाने की कला सिखाई। चुनाव ने अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए परिवार की तरह रहने वाले गांव को तोड़-मोड़ कर नष्ट कर दिया।

गांव में विकास के नाम पर सरकारी कर्मचारियों की फौज उमड़ी और किसान के लड़कों के मन में भी बजाए खेती खलिहानों में काम करने के स्कूल, अस्पताल में चौकीदारी करने की ललक जगी।

मेहनत और मजदूरी से जीवन यापन करने वाले और भरपूर वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारियों के बीच जमीन आसमान का फर्क होने से किसान की हल और मूठ पर से पकड़ ढीली हुई। और पकड़ क्या ढीली हुई गांव की सारी अर्थ व्यवस्था चरमरा गई।

गांव के विकास के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएं बनीं और उनका अधिकांश पैसा अफसरों और दफ्तरों की फाइलों में बिलाने लगा। पहले जिस कच्चे रास्ते से खेतों की अनाज से भरी गाड़िया गांव लौटती थीं, उससे ठेले और ठलुओं के जरिए गांव का अन्न धन शहर में पहुंचने लगा।

अब जब भी गांव जाना होता है सूरज की पहली किरण के साथ खेत में काम पर जाने वाला आदमी ताश और सट्टे के खेल में व्यस्त पाया जाता है। गांव के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाओ, कहीं भी आत्मीयता के दर्शन नहीं होते हैं। गरीब अधिक गरीब होते जा रहे हैं और पैसे वाले पैसे के बल पर खेत खलिहान, पंच-पंचायत और सभा सोसायटी पर कब्जा कर सारी व्यवस्था को रौंद डालने में लगे हैं। गांव में कहीं सुख और शांति के दर्शन नहीं होते। **सोचता हूं मेरे गांव को क्या हो गया है?**

# सेवा और समर्पण का एक नाम-भगिनी निवेदिता

-सुनीता महाजन

महान वैज्ञानिक जगदीश चन्द बसु से लेकर महर्षि अरविन्द, विवेकानन्द, रास बिहारी घोष सहित अनेक समकालीन महापुरूषों की प्रशंसापात्र बनीं भगिनी निवेदिता एक चिरपरिचित नाम है।

मार्गरिट एलिजाबेथ नोबल यानी भगिनी निवेदिता के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- 'मेरे इंग्लैंड के कार्यरूपी पौधे में जो पुष्प लगे उनमें सर्वोत्कृष्ट पुष्प हैं। 'भगिनी निवेदिता'। इससे और अधिक गौरव क्या होगा भगिनी निवेदिता के लिए।

भगिनी निवेदिता जन्म से आयरिश और मूलतः स्कॉटिश थी। २८ अक्टूबर १८६७ को उनका जन्म आयरलैंड के इंगन्नोन जिले में टाइरोन नगर में हुआ। इनके पिता का नाम सेमुएल एवं माता थी मेरी हैमिल्टन। इनके दादाजी एंव नाना जी दोनों ने ही आयरलैंड के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया था। पिताजी धर्मोपदेशक रेवरंड थे। वे गरीबों के मित्र थे। उनका धर्म था सेवा। मार्गरिट भी बचपन में उनके साथ गरीब बस्तियों में जाया करती थी।

मार्गरिट के जन्म से पूर्व ही उसकी मां ने आने वाली संतान परमेश्वर को अर्पण करने का निर्णय किया था। समर्पणभाव के संस्कार लेकर जन्मी यह कन्या कुशाग्र बुद्धि की थी। उसके विषय थे संगीत, चित्रकला और प्राकृतिक विज्ञान। १७ साल की आयु में उनकी शिक्षा पूर्ण हुई। उनके छात्रावास की प्रमुख मिस लॉरट का उन पर काफी प्रभाव था। संयम और अनुशासन, त्याग और तपस्या, नेतृत्व और आज्ञापालन का मनोहारी संगम जो भगिनी निवेदिता के जीवन में दिखाई देता है उसकी जड़ यही है।

केवल ३२ वर्ष कि आयु में उनके पिता का देहांत हो गया। अब मार्गरिट कंधों पर एक भाई, एक बहिन तथा विधवा मां की देखभाल का दायित्व आ गया। मरने से पहले उनके पिता ने मार्गरिट की मां को विश्वासपूर्वक बताया कि वह महान कार्य करने के लिए निकलेगी, तब उसको रोकना नहीं। १८८४ में इंग्लैंड में जाकर मार्गरिट ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। मार्गरिट प्रयोगशील शिक्षिका थी। बहुत उद्दंड छात्रों को भी उन्होंने वश में रखकर उनके मन में पढ़ाई के प्रति रूचि जागृत की। उस समय मान्यता प्राप्त फ्रोबुल शिक्षा प्रणाली उन्हें पसंद आयी।

१८९२ में विम्बलडन में उन्होंने स्वयं का विद्यालय प्रारंभ किया, नाम था 'रस्किन स्कूल'। मार्गरिट धर्म अर्थात् शाश्वत सत्य की खोज और बोध के लिए भी व्याकुल थीं। ईसा का तत्वज्ञान उसका समाधान करने में असमर्थ रहा। बुद्ध के जीवन तत्वज्ञान का भी उन्होंने अभ्यास किया परंतु उनके ज्ञान की प्यास बुझ नहीं पायी। आत्मानंद की प्राप्ति नहीं हुई। अचानक उन्हें आशा की किरण दिखायी दी एक संन्यासी स्वामी विवेकानन्द में'। एक सभा में स्वामी जी ने कहा 'आज विश्व को आवश्यकता है-कुछ लोगों की जो रास्ते पर खड़े होकर कहें 'हमारे पास ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। बोलो, कितने लोग तैयार हैं? यह आह्वन मार्गरिट के मन को छू गया। अब वे स्वामीजी के कार्य से पूरी तरह जुड़ गयी।

स्वामी जी पश्चिमी देशों की यात्रा समाप्त कर भारत लौटे। उनके द्वारा इंग्लैंड में स्थापित 'वेदान्त केन्द्र' मार्गरिट ही चलाती थीं। परन्तु बार-बार मन में विचारों का तूफान उठता था-स्वामी जी के शब्द याद आते थे 'सर्वस्व त्याग कर, रास्ते पर खड़े होकर कहें कि मैं ईश्वर के लिए हूं!' बोले कौन है? 'क्या इनमें से मैं एक नहीं हो सकती?' मार्गरिट के मन में यह प्रश्न गूंजता था और उन्होंने निश्चय किया कि अब वे इन बातों में लिप्त नहीं रहेंगी। स्वामी जी के पास जाएंगी और सचमुच वे अपनी जन्मभूमि, अपना पंथ, ममत्व के बंधन, अपना प्यारा विद्यालय सभी कुछ छोड़कर हिंदुस्तान को चल पड़ीं। स्वामी जी ने पत्र द्वारा उनके सामने भारत का अत्यष्ण वातावरण, लोगों की रूढ़िवादिता, दारिद्रय,

अज्ञान, यहां आने पर आने वाली आपत्तियों का चित्र रखा। लेकिन वे घबरायी नहीं क्यों कि उन्हें पता चला कि भारत की यात्रा, एक प्रकाश यात्रा है। अमरत्व की ओर ले जाने वाली यही राह है।

२८ फरवरी १८९८ में करीब ३० वर्ष की आयु में वे भारत पहुंची। पहुंचने पर उनके शब्द धन्योद्गार थे-धन्य मैं भारत में हूं।' दूसरे दिन से ही स्वामी स्वरूपानन्द जी उन्हें बंगला भाषा सिखाने के लिए आने लगे।

मार्च में ही प्रथम बार मां शारदा से मिलीं। अपनी दैनंदिनी में 'सब दिनों का राजा' ऐसा वर्णन उन्होंने लिखा। माताजी के कमरे में चटाई बिछी हुई थी। वास्तव में मार्गरेट को कभी जमीन पर नीचे बैठने की आदत नहीं थी। लेकिन वे बिना झिझक उनके साथ नीचे बैठ गयीं। इस प्रथम भेंट में देश-परदेश पंथ, भाषा इन सभी बाधाओं के पर्वत चूर-चूर हो गये। एक ही रिश्ता शेष रहा मा-बेटी का। २५ मार्च १८९८ में मार्गरेट का उपनयन हुआ और स्वामी विवेकानन्द ने उनका नाम रखा 'निवेदिता'। जिसने भगवान को, धर्म को, स्वयं प्रेरणा से समर्पित किया, वह 'निवेदिता'। कितना यथार्थ है। यह नाम। जिस पर हम अत्यन्त गर्व करें ऐसी यह महिला थी। वे कहती हैं- 'स्वामी जी ने मुझे बेटी मानकर आपकी देश भगिनी के रूप में स्वीकारा है, अतः मैं आपकी भगिनी' हूं। इसी कारण वे 'भगिनी निवेदिता ' के नाम से विश्वविख्यात हुई।

निवेदिता की लेखनी जाज्वल्य थी। रामानंद चटोपाध्याय कहते हैं।-'घिसे-पिटे विषय भी उनकी लेखनी से मनोहारी बनते थे, जगमगा उठते थे।' माँ काली, शिव और बुद्ध, हिन्दू धर्म की बालकथाएं, आक्रामक, हिन्दुत्व, वेव ऑफ इंडियन लाइफ, 'द' मास्टर एज' न्यू सा हिम जैसी उनकी कृतियां अमर हैं। अथक परिश्रमों के कारण १६११ ईस्वी में प्रारम्भ से उनका शरीर थक रहा था। विश्राम के लिए उन्हें दार्जिलिंग ले जाया गया। देहरूपी वस्त्र त्याग कर अब वे अमरत्व की ओर बढ़ रही थीं।। १३ अक्टूबर सूर्य उस दिन तेजस्विता से प्रकट हुआ। अपने ही एक तेजांश को अपने में समा लेने के लिए। सूर्यदेव का दर्शन होते ही निवेदिता की प्राणज्योति शांत हुई। तेज तेज में समा गया। ध्येय रवि का दर्शन करने वाली उनकी जीवन यात्रा थी-'तमसो' मां ज्योतिर्गमय-मृत्योक्षां अमृतंगमय' की साक्षी का अन्त हुआ।

## पिंकी ने अच्छा काम किया

(१) पिंकी ने भई चोरी करी,
पुलिस दौड़ कर आई
जेल में बन्द हुई
सबसे फटकारी गई
चोरी नहीं करे हम,
पिंकी से ये सबक ले हम।

(२) पिंकी ने अच्छा काम किया
दीदी ने उसको शाबास दिया
पापा कहते पिंकी बड़ी अच्छी है,
हमारे घर की रोशनी है।

—स्वाति आयु चार वर्ष

# काश! वह विप्लवी संन्यासी जीवित होता

– वचनेश त्रिपाठी साहित्येन्दु

संन्यास लिया ही था उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए। शुरू में जब वे भगवा-वेशधारी नहीं थे तो बंगाल की अनुशीलन समिति नाम के विप्लवी दल में व्यस्त रहते थे। समिति ने निश्चय किया कि धन-संग्रह के लिए घर-घर जाकर भिक्षा एकत्र करनी चाहिए।

प्रफुल्ल कुमार सेन ने यह भी किया। वे घर-घर जाकर एक-एक मुट्ठी अन्न मांगते, फिर उसे बाजार में बेचकर प्राप्त धन को समिति में जमा कर देते। प्रफुल्ल कुमार ने भरी तरूणाई में ही निजी स्वार्थों को तिलांजलि दे दी थी।

प्राय : टोले मुहल्ले के लोग जब प्रफुल्ल कुमार को बस्ती में घर-घर भिक्षा मागंते देखते तो उन्हें रोक देते । कहते, 'अरे प्रफुल्ल क्या तुम पागल हो गए हो जो भिखारी का काम करते हो? तुम्हारे दादा लोग (विप्लवी) तुम्हें यही हीन कर्म सिखाते हैं? भला भीख मांगने का देश की स्वाधीनता से क्या सम्बन्ध है? तब प्रफुल्ल केवल एक ही उत्तर देते-- 'भिक्षा मैं इसलिए मांगता हूं कि एक तो हमारे दल को धन की आवश्यकता है-- दूसरा ऐसा करने से हमारे मन में जमा अहंकार नष्ट होता है।

प्रफुल्ल के इस उत्तर से उन लोगों का भला क्या समाधान हो सकता था जो अंग्रेज सरकार को सलाम बजाने में आत्मगौरव मानते थे और सरकारी नौकरी कर लेना ही जीवन की सफलता मानते थे। उन्हीं दिनों एक बार कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रफुल्ल को बुलावा भेजा। संदेश पाकर प्रफुल्ल उनके पास गए। रवि ठाकुर ने उनसे कहा-- तुम्हारे लिए एक बड़ा काम ले आया हूं विदेश से। प्रफुल्ल ने कहा-- आदेश करिए।

## थाईलैंड के प्रचारक

रवि ठाकुर ने बताया--मैं दक्षिण-पूर्व एशिया की यात्रा पर गया था। थाईलैंड पहुंचा तो वहां के शिक्षा मंत्री राजकुमार धानी निवास ने मुझसे कहा कि आप हमारे देश के लिए भारत से कोई ऐसा विद्वान और सदाचारी पुरूष भेजिए जो थाई देश (थाईलैंड) में धार्मिक-सास्कृतिक गरिमा का हास रोके तथा नैतिक उत्थान प्रदान करे। मैंने थाई शिक्षा मंत्री से वादा किया कि ऐसा सांस्कृतिक प्रचारक आपके लिए खोजूंगा। थाई शिक्षा मंत्री वृद्ध पुरूष हैं, ८४ साल के होंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए सौभाग्य से आपका ही नाम सर्वोपरि आया --क्या आप इसे स्वेच्छा से स्वीकारेंगे।

प्रफुल्ल ने तुरन्त हां कर दी। रवि ठाकुर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रफुल्ल को शाबाशी दी। उसके बाद प्रफुल्ल ने भगवा बाना धारण किया और पानी के जहाज से मलाया पहुंचे। वहां से जहाज से पेनांग बन्दरगाह पर उतर गए। अपने आने की सूचना वहीं से थाई भेज दी। उन दिनों थाईदेश में वहां के प्रवासी भारतीयों की एक संस्था चलती थी--जिसका नाम था' हिन्दू समाज'। इस संस्था में एक देशभक्त पं. रघुनाथ शर्मा भी सक्रिय थे। वे सुभाष चन्द्र बोस के सहयोगी रहे थे थाई शिक्षा मंत्री ने पं. रघुनाथ शर्मा को सूचित करके प्रफुल्ल कुमार सेन (जो अब स्वामी सत्यानन्द नाम धारण कर चुके थे) के थाई देश आने और उनके भोजनादि की व्यवस्था करने का आग्रह किया।

यह सूचना शर्मा जी समेत सभी भारतीयों के लिए हर्षदायक थी। शर्मा जी स्वाभीजी के स्वागत-सत्कार तथा भोजन आवास आदि की व्यवस्था करने में व्यस्त हो गए। थाई शिक्षा मंत्री ने यह व्यवस्था इसलिए कराई ताकि भारतीय होने के कारण स्वामी सत्यानन्द पुरी को भोजनादि में कोई असुविधा न हो। स्वामी सत्यानन्द जब पेनांग से ट्रेन द्वारा बैंकाक पहुंचे तो पं रघुनाथ शर्मा ने उन्हें बैंकाक – स्थित भारतीय संस्था 'हिन्दू समाज ' में ले जाकर ठहराया। उनके संम्पर्क से पं रघुनाथ शर्मा सहित सभी भारतीय बड़े आनंदित हुए।

अगले दिन से सत्यानन्द ने एक शिक्षाविद् से थाई भाषा और उसका व्याकरण आदि सीखना शुरू कर दिया – जिस थाई शिक्षाविद् ने उन्हें थाई भाषा सिखाई – कालान्तर में वही एक दिन थाई देश के शिक्षा मंत्री हुए। वे तब भारत की यात्रा पर भी आए थे तथा उन्होंने स्वामी सत्यानन्द के विषय में बड़ी प्रशंसात्मक बातें दिल्ली में बताई थीं। उन्होंने कहा था कि 'हमारे देश (थाई देश) के लोग स्वामी सत्यानन्द पुरी के प्रति बड़ा ही आदरभाव रखते हैं। वे एक ऊंचे चरित्र के हिन्दू संन्यासी थे जिनका जीवन देश भक्ति से ओतप्रोत था।

स्वामी जी ने सुखद आश्चर्य से देखा कि थाई भाषा जो वस्तुतः संस्कृत से ही बनी है – उसका शुद्ध रूप संवारा जाए।

स्वामी जी ने दो वर्षो में थाई भाषा का प्रचुर ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्होंने दो अखबार भी निकाले। एक थाई भाषा में दूसरा अंग्रेजी में। इन अखबारों के नाम थे, **'प्राच्य-वाणी और वाइस आफ ईस्ट।'** यहीं सत्यानन्द के थाई भाषा में रचे बीस ग्रन्थ प्राप्त हैं। उन्होंने थाई भाषा में गुरू गोविन्द सिंह की जीवन कथा लिखी। 'गीता' और 'थाई रामायण' का रूपान्तरण किया। उन सब ग्रन्थों में प्रकाशन संस्था का नाम 'धर्माश्रम' अंकित है। यही कारण है कि आज भी स्वामी सत्यानन्द पुरी का नाम आते ही थाई देश का आदमी श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है।

सत्यानन्द ने न केवल थाई भाषा का संस्कार परिष्कार किया, बरन् उसको व्याकरण भी प्रदान किया जो पहले और कोई कर पाने में सक्षम न हुआ था। सत्यानन्द ने चीनी भाषा का अभ्यास करके नागार्जुन-कृत कुछ ग्रन्थों का भी चीनी भाषा में अनुवाद किया, उन्हें छपवाया। वे दुर्लभ ग्रन्थ हैं। सत्यानन्द ने संस्कृत शब्दावली से थाई भाषा को अधिकाधिक समृद्ध बनाया- उनके पहले वे तत्सम शब्द थाई भाषा में न थे।

सत्यानन्द ने इस साहित्यिक तथा भाषाई सेवा के साथ ही वहां एक आश्रम स्थापित किया, जिसका नाम रखा- 'आश्रम बधनाथम् थाई भारत' (अर्थात आश्रम धर्मवर्धन थाई-भारत) यह सत्यानन्द थाई भारत दोनों देशों के हितार्थ सांस्कृतिक सेवा प्रकल्प था। आश्रम भवन पर भारतीय और थाई दोनों देशों के राष्ट्रीय ध्वज फहरे यह बात वहां के ब्रिटिश दूतावास में जो अंग्रेज अधिकारी थे, उन्हें बहुत खटकी। उन्होंने संस्था के मन का शिकार बनाना चाहा। परन्तु उसमें थाई सरकार आड़े आ गई। कारण थाई देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री विपल संग्राम सत्यानन्द तथा उनके कार्यो पर अगाध आस्था रखते थे।

इसी बीच सत्यानन्द पुरी का प्रसिद्ध विप्लवी नेता रासविहारी बोस से संपर्क हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध अभी भी जारी था। उक्त आश्रम भी स्वामी जी ने सन् १९४० के नवम्बर महीने में स्थापित किया था। यानी विश्वयुद्ध के बीच ही आश्रम खुला। सत्यानन्द सन् १९२७ में थाईलैण्ड पहुंचे थे। वहां अब उन्हें प्रवास करते १३ साल हो रहे थे। विश्वयुद्ध के दौरान यातायात प्रतिबंधित सा हो गया। परन्तु सत्यानन्द पुरी ने थाई शासन की उस पावन्दी से भारतीय प्रवासियों को बहुत राहत दिलाई।

सत्यानन्द को यह अधिकार थाई सरकार से प्राप्त था कि वे जिसे चाहें यात्रा काल के लिए अपना दस्तखती अनुमति पत्र प्रदान कर सकते हैं। तब उस आदमी की कहीं रोक-टोक न होगी।

स्वामी जी थाई सरकार की ही योजना से रोज ३० मिनट का प्रसारण भी थाई आकाशवाणी से किया करते थे। इसके अन्तर्गत वे जो भी बात या शिक्षा देना चाहते, दे सकते थे। थाई देश में यह अधिकार कभी और किसी भारतीय को प्राप्त नहीं हुआ। अवश्य क्रांतिकारी नेता रासबिहारी बोस को जापान में यह अधिकार प्राप्त था। इस समय तक सुभाषचन्द्र बोस ने जर्मनी के ड्रेसडेन नगर में अपना प्रधान कार्यालय बनाकर १२ हजार सैनिकों की ८ बटालियनें बना ली थीं। यही 'आजाद हिन्द फौज' का प्रारम्भिक रूप था। इन फौजियों को जर्मनी द्वारा लीबिया आदि देशों की लड़ाई में जर्मनी में जर्मनों ने कैद कर लिया था। ये ब्रिटिश सेना में युद्धरत थे। आगे सन् १९४२ में स्वामी सत्यानन्द पुरी तथा रासबिहारी बोस के संदेश सुभाष बाबू को मिले जिनमें उन्हें जापान आने का निमंत्रण दिया गया था।

**स्वामी जी की हत्या या दुर्घटना**

इसी समय यह तय हुआ कि रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में जापान, मलाया, थाई देश स्थित भारतीयों का एक सम्मेलन टोकियो (जापान) में किया जाए जिसकी तिथि २८ मार्च, १९४२, रखी गई। सम्मेलन तीन दिन चलना था। इस सम्मेलन में जाने के लिए स्वामी सत्यानन्द पुरी सिंगापुर में विमान में बैठे लेकिन विमान बीच में दुर्घटनाग्रस्त हो गया। कुछ लोगों का मत है कि षड्यंत्र रचकर स्वामी जी की हत्या इस बहाने करा दी गई। यदि ऐसा हो तो यह षडयंत्र अंग्रेजों ने ही रचा होगा। इस तरह २७ मार्च, १९४२ को सत्यानन्द शहीद हो गए। वे जन्मे थे सन् १८८९ में।

**वे जिन्दा होते !**

टोकियो सम्मेलन में चीन, जापान, मलाया, थाई देश आदि देशों के भारतीय प्रतिनिधि शामिल हुए थे। इस सम्मेलन में तय हुआ कि सन् १९४२ के जून मास में बैंकाक में एक कांफ्रेंस की जाए, जिसमें जावा, सुमात्रा, हिन्द चीन, वर्मा, बोर्नियो, हांगकांग, मलाया और जापान के सौ प्रतिनिधि आएं। इंडियन इंडिपेंडेंट लीग (भारतीय स्वतंत्रता संघ) नाम की संस्था की नींव भी वहीं डाली गई। आगे इसी जून मास में बैंकाक में जो सभा हुई उसमें बर्लिन से पनडुब्बी में आकर सुभाषचन्द्र बोस भी शामिल हुए तथा वहीं सम्मेलन में, 'आजाद हिन्द फौज' कायम की गई। रासू दा ने इसकी बागडोर सुभाष बोस को सौंप दी। काश! उस दिन सत्यानन्द पुरी भी जीवित होते?

# वेद प्रचार में प्राप्त सहयोग

**सर्वश्री-** अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा संघ-दिल्ली.१००१) स्वामी उत्तम प्रकाश जी-दिल्ली-५००) हरबंस लाल कुमार-मुरादाबाद-४००) सरिता भाटिया-दिल्ली-२००) पी० सी० सरेरा-दिल्ली-२००) खुशी राम शर्मा-जालन्धर-२००) नावल्टी स्टूडियो-बम्बई-२००) राम अनुज मौर्य-नैनीताल-१६२) हंसराज जी-दिल्ली-१५०) जोगेन्द्रलाल अग्र-बम्बई-१२५)राजेन्द्र मलिक-कलकत्ता-१२०) वैदिक पारिवारिक सत्संग मंडल-पोरबन्दर-१११) रमेशचन्द्र शर्मा-बुलन्दशहर-४६) के० एल० गोधा-उदयपुर-३४) रामसिंह आर्य-रोहतास-२६) ओमप्रकाश-दिल्ली-२२)

### १०१ दान

**सर्वश्री--** चन्दादेवी आर्या-बस्ती। घनश्याम गोयल-नई दिल्ली, रामकृष्ण-दिल्ली। वैद्य जय प्रकाश अग्रवाल-बम्बई। मै० मानकचन्द-हिंगोली। उमाशंकर बाजपेई-फैजाबाद। सन्दीप गोयल-पटियाला। सदगुणा के० भुतैया-जूनागढ़।

### १००/- दान

**सर्वश्री** चमनलाल - नई दिल्ली बोधराज जी-दिल्ली ओ३मप्रकाश आर्य-खरगौन अम्बादास शंका-परली बैजनाथ महेशचन्द्र नरेश चन्द्र-बुलन्दशहर आर्य समाज-डोसा श्रीमती लीला बहन-बम्बई द्वारकादास रामेश्वर पालडीवाले-बुलढाणा संग्राम सिंह-वाराणसी भिछालाल अग्रवाल-शाहजहाँपर रत्नाकर रत्न वर्मा-मेरठ रामचन्द्र आर्य-बम्बई राजेन्द्र सिंह बिष्ट-पौढ़ी गढ़वाल डा० लखन प्रसाद शास्त्री-नई दिल्ली आर्य समाज-जामनगर रामेश्वर प्रसाद शास्त्री-नागौर प्रेम जी भाई-दीव।

### ५१/- दान

**सर्वश्री-**

लालबिहारी शर्मा-बस्ती। दुर्गा प्रसाद शर्मा-दिल्ली। महेन्द्र कुमार गुप्ता-दिल्ली। गौरीशंकर हरि प्रसाद अग्रवाल-दिल्ली। रामचन्द्र महेन्द्र-सीतापुर। बनारसी लाल-अमृतसर। डा० कृष्ण कुमार शर्मा-मेरठ। डॉ० एन० एन० बरनवाल-थाना। वाई० के० अग्रवाल-नई दिल्ली। राधेश्याम नागर-मुरैना। वीरेन्द्र सक्सैना-कानपुर। जी० डी० शर्मा-पुणे। महेन्द्र सिंह तोमर-ग्वालियर। लालजी देवशी पटेल-भुज। वी०पी० देशमुख-अहमदाबाद। हेमराज बजरंगलाल-कोल्हापुर। मातावदल चौधरी-बस्ती। के० एस० त्यागी-पौढ़ी गढ़वाल। शीलम वैंकटेश्वरराव-हैदराबाद। एस० एस० देवड़ा-जयपुर। गणपतलाल आर्य-टोंक। मदनलाल गोयल-कानपुर। परमानन्द-जालन्धर। सुगन्धी बाई आर्या कालीकट। जयनारायण शर्मा-दोघट। प्रेम प्रकाश-नई दिल्ली। आनन्दराव-नागपुर। लक्ष्मी ग्राम उद्योग-हरिद्वार। बैजनाथ मेंहदीरत्ता-बस्ती। सुनील कुमार चावला-पटियाला। चन्दनगिर्रानी-खण्डवा जयवर्धन उप्रेती शास्त्री-अल्मोड़ा

### ५०/- दान

**सर्वश्री** - आर्य समाज मन्दिर - रोहतक । सी० पी० विश्वकर्मा-देवरिया। एच० हरिशचन्द्र-जीन्द। एच० सी० गुप्ता- दिल्ली। सुरेशचन्द्र बंसल-हापुड़। योगेन्द्र सिंह आर्य-मुजफ्फर नगर। दयालाल गोपाल - सिरगुप्पा। हीरालाल मुरारी लाल-गंगटोक। बदरीलाल बीकानेर ओमप्रकाश पांडे-जलपाईगुड़ी। ज्ञानचंद्र आर्य-लुधियाना। आर्य समाज मन्दिर-सोनीपत। आर्य समाज-कीरतपु। रमेश सिंह रावेर-रायगढ़। ओमप्रकाश इन्दु-फगवाड़ा। एम० कमलनाथराव-आदिलावाद। पी० आर्यानन्द-मद्रास। किशन गोपाल-नागपुर। श्रीमती ज्ञानवती-फैजाबाद। एम० के० राधाकिशन-मांडवी उमराव सिंह-अलवर। रूद्रनाथ सिंह-बस्ती। पवन कुमार-नई दिल्ली। केदारनाथ तिवारी-वाराणसी।

### २५/- दान

**सर्व श्री--**राधाकृष्ण राठी-जावला। भाऊ महाराज देशपांडे-धुले। जगन्नाथ सिंह-बलिया। के० रामस्वामी आर्य-खम्माम। नारायण दास कटारिया-जोधपुर। मनीभाई पटेल-कलकत्ता। डाॅ० एम० एल० दुबे- राऊ। एन० पी० कलकत्ता।

**-सभी दानदाताओं का धन्यवाद -- व्यवस्थापक**

पाकिस्तानी कहानी

# घाटा

-"तज़ईन फरीद"

अनु. : कुलदीप अविनाश भंडारी

कहानी पाकिस्तानी है। किन्तु वर्णित समस्या ऐसी है कि जिसे हम भी अनेक परिवारों में भोग रहे हैं। कारण भी जो वर्णित है , वह भी सच है।

उफ़ प्यास से गला सूख रहा है। सुराही भी तो रात को भर कर इतनी दूर रख दी थी कि अब हाथ बढ़ा कर उठाई भी नहीं जा सकती। अभी थोड़ी देर पहले तो कुछ लोग पास-पड़ोस के बैठे थे। हाल पूछने आए थे। उस समय मांग लिया होता। पता नहीं क्यों, कोई हाल पूछने आए तो ऐसा लगता है जैसे तरस खाने आया है बेबसी पर. . . . . . .। मैं कौन-सा पुराना बीमार हूं, बुखार ही तो है। हर कोई दवा खाने पर जोर देता है। इतना नहीं हुआ कि पानी ही पिला देता कोई। राशिद भी तो नहीं आया दो दिनों से। शुरू-शुरू में तो रोज आया करता था। शायद आज ही आ जाए। मगर आ भी गया तो क्या कर लेगा। पहले तो ऐसा नहीं था। शादी के बाद पत्नी के कहे में आकर बदलता चला गया, और वह लड़की? तौबा! देखने में कितनी मासूम बातें, कितनी भोली-भाली लेकिन ले गई मेरे बेटे को मेरी नजरों से दूर।

वह नेक बख्त भी तो चली गई मनों मिट्टी के नीचे-मुझसे इजाजत भी नहीं ली। बड़ा गर्व था उसे हर काम मेरी मर्जी से करती है। कितने अरमान पाले थे कि चांद-सी बहू लाऊंगी। ऊंचे घराने की माडर्न लड़की जो मेरे बेटे के साथ-साथ बदलते हुए जमाने में चल सके और ले आई ढूंढ़ कर इसे। बहुत खुश थी लेकिन काश वह हमीद की सीधी-सादी बेटी को ले कर आई होती। वह ऊंचे घराने की नहीं तो क्या हुआ, पढ़ी-लिखी तो थी और सलीका इतना कि पलभर में पूरे घर को चमका देती। फिर स्वभाव बड़ा ही श्रेष्ठ व नेक! कैसी सेवा करती है अपने ससुराल वालों की। यहां तो खाना भी स्वयं ही बनाना पड़ता है। उस नेक वख्त के मरने के बाद तो कोई खाना पकाने वाला भी न रहा इस बुड्ढे के लिए। खुद तो चली गई लेकिन माडर्न बहू को लाकर ।

वह अक्सर कहा करती थी, बेटा "राशिद तो हमारे बुढ़ापे का सहारा है। कितनी मेहनत की थी मैंने उसके भविष्य को संवारने के लिए। शहर में सबसे बड़े स्कूल में दाखिल कराया तथा बेशुमार घरेलू खर्चों के बावजूद उसे टयूशन करवाता था। उसके इंजीनियरिंग में दाखिले पर मैं कितना खुश हुआ था। ऐसा लगता है कि जैसे मृग मरीचिका के पीछे दौड़ रहा था। लेकिन मृगमरीचिका के पीछे दौड़ने वाला थक नहीं जाता क्या? मैं भी थक गया हूँ और राशिद शायद आज भी नहीं आएगा। अरे हम दोनों ने तेरे लिए क्या-क्या कष्ट नहीं झेले। "हां जिस तरह तुम.जवानी में मेरा मुंह बंद कर दिया करते थे जैसे सिर्फ यही तुम्हारी जिम्मेदारी थी। एक तो जमीर भी बहुत बोलने लगा है। बोलो उसकी नैतिक शिक्षा-दीक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं था? अगर आज उसके पालन-पोषण में खुदा के खौफ का तत्व शामिल होता तो उसे मकान से अधिक तुमसे दिलचस्पी होती और तुम्हारी सेवा में उसे अपना भविष्य दिखाई देता लेकिन उसके व्यक्तित्व का निर्माण तो इन लाइनों पर हुआ था कि वह बड़ा होकर अच्छा इंजीनियर बने, खूब पैसा कमाए और ऐश करे।" ऐसा तो वह कर रहा है लेकिन यह नहीं सोचता कि उसे भी एक दिन बूढ़ा होना है। सुना है कि रिश्वत भी लेने लगा है।

"मगर जाहिद हुसैन तुमने भी तो यही कहा था वह तो इसलिए कि बंधी-बंधाई आमदनी बहुत कम प्रतीत होती है।" अब शिकायत किस बात की? आत्मा ने समझाया। हां शायद इसमें भी हमारा दोष है। हमने उसका पालन-पोषण गलत बुनियादों पर किया तथा उसके विवाह के अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय को भी अपनी भौतिक इच्छाओं की बलि चढ़ा दिया वर्ना आज स्थिति भिन्न होती। खामोश।

खुदा के लिए खामोश हो जाओ। आखिर आज अन्दर की आवाजें इतना परेशान क्यों कर रही हैं?"

कितना अरमान था मुझे इस आंगन में अपने पोतों को खिलाने का. . . . . . दादा जान टाफी लूंगा. . . . . . . ।. . . . . . . .दादा जान आईसक्रीम खाऊंगा. . . . . . .कितनी इच्छा थी कि ये आवाजें कानों में रस घोलें। पहला बच्चा साल भर का भी नहीं हुआ था कि सामान लपेट कर चल दिया। अब तरस दादा जान, दो घूंट पानी के लिए! अब तुम इस पर दुखी क्यों हो? तुमने ही तो पश्चिमी ढंग की जिंदगी जीने की सीख दी थी उसे।

"हां सचमुच।" अब अगर वह इस अंदाज से सोच रहा है तो मेरा दिल क्यों दुःख रहा है? अब तो वह मुझे दकियानूसी समझता है। आजकल तो डिस्पोजेबल दौर है। आईसक्रीम खा ली और कप फैंक दिया। इंजैक्शन लगा कर सिरिंज फैंक दी। उद्‌देश्य पूरा हो जाने के पश्चात चीज निरूदेश्य हो जाती है। जिस प्रकार मैं बेकार हो गया हूं राशिद के लिए। वह भी मुझे अब फैंक देना चाहता है।

उफ.! प्यास बहुत बढ़ गई है। सुराही भी तो इतनी दूर रख दी है। अब तो सुराही नजर भी नहीं आ रही है। मेरी नजर भी तो बहुत कमजोर हो गई हैं। मगर इतनी कमजोर भी नहीं हुई है कि अपने बेटे और बहू के चेहरे पर फैला हुआ लालच मुझे दिखाई न दे। दोनों की नजरें मेरे बिस्तर के आसपास कुछ तलाश करती रहती हैं। चैक बुक तो हमेशा मैं अपने तकिए के नीचे रखता हूं। उनके आते ही होशियार हो जाता हूं, मगर कब तक? मेरे मरने के बाद सबकुछ उन्हीं का हैं। मैं अपने साथ कब्र में तो ले जाने से रहा।

कब्र! उफ कैसी भयावह जगह होगी। कैसे गुजारा होगा वहां? और फिर आखिर जाहिद हुसैन. . . . . . . तुमने इस जिंदगी के लिए कुछ भी तो न किया। साठ वर्ष की उम्र तक क्या करते रहे। कभी उस जिंदगी के बारे में कुछ जमा करने के लिए सोचा? हमेशा यहां की परवाह की। अब क्या होगा। काश अपनी विधवा बहन को सहारा दिया होता। उसके बच्चे कैसी लालसा से देखते थे राशिद के खिलौनों को, उसके नए कपड़ों को। मगर उन पर पैसा खर्च किया भी तो सिर्फ खानदान वालों को दिखाने के लिए। सबकुछ व्यर्थ हो गया। कैसी निगाहों से देखती थी बहन आयशा। अगर कभी भूले-भटके उसके घर का चक्कर लगा लेता तो मैं उससे निगाहें चुराता रहता। मेरी भी तो कुछ मजबूरियां थीं। हजारों खर्चे होते थे घर के। विधवा बहन की सहायता की होती तो वह राशिद के भी काम आ रही होती और मेरे भी काम आती। कितना अच्छा मौका दिया था खुदा ने पुण्य कार्मों में अपना बैंक बैंलेंस बढ़ाने का। लेकिन आह, मैंने खो दिया। जिंदगी के हर सौदे में घाटा ही घाटा खरीदा अपनी मर्जी से, अपनी सहमति से। □□

## गणित के हर सवाल को पांच तक के पहाड़े से हल किया जा सकता है

हाल ही में प्रकाशित वैदिक गणित नामक पुस्तक की रचना स्वर्गीय जगदगुरु भारती कृष्ण तीर्थ ने आठ साल की मेहनत के बाद की थी। उनका दावा है–

जिस किसी भी विद्यार्थी को जोड़ना या घटाना आता हो और पांच तक के पहाड़े याद हों वह स्वयं ही जरूरत पड़ने पर अन्य सारे पहाड़े बना सकता है और प्रसंगोचित सरल वैदिक सूत्रों की सहायता से बड़े-बड़े गणित का गुणन फल आसानी से फौरन निकाल सकता है।

इस पुस्तक में सोलह वैदिक गणितीय सूत्रों जिनमें केवल १२० शब्द हैं के माध्यम से चालीस अध्यायों में गणित की विभिन्न समस्याओं को सरलतम प्रक्रिया से हलक रने की विधि सुझाई गई है। जैसे गुणा, भाग, खंडभ्करण फलन, आवर्ती दशमलव, वर्गो का योग और अंतर वर्ग फल, वर्गमूल, पूर्ण घन के घनमूल पाइथगोरस प्रमेय, एपोलोनियस प्रमेय आदि।

वैदिक स्त्रोतों पर आधारित और विकसित इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सुझाए गए सूत्रों को पूरी तरह समझने के बाद गणित में शून्य व्यक्ति भी उच्च गणित में आसानी से श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक में आधुनिक पश्चिम पद्धति के गणित की छाप कहीं नजर नहीं आती। इसका नितांत नवीन दृष्टिकोण ही इसका मुख्य आकर्षण है। उल्लेखनीय है कि वैदिक गणित के प्रति हाल ही में पश्चिमी देशों में दिलचस्पी और जागरूकता बढ़ी है।

पुस्तक में वर्णित १६ सहज ही समझ में आ जाता है उनका प्रयोग सरल है तथा सहज ही याद हो जाते है। इसकी सारी प्रक्रिया मौखिक है, मसलन १६ अंकीय आवर्ती दशमलव के प्रश्न के उत्तर के लिए जहां प्रचलित विधि के अनुसार हल करने के लिए १८ पैड़ियों की जरूरत पड़े वहां वैदिक विधि के अनुसार उसे केवल एक पैड़ी में हल किया जा सकता है।

शिक्षक और छात्र अपनी सुविधा इच्छा, स्वभाविक रुचि या प्रकृति विशेष के अनुसार इसके क्रम में, स्वतंत्रता से परिवर्तन कर सकते हैं इसीलिए कुछ विद्वानों ने इस पुस्तक को बिना आंसू के गणित की संज्ञा दी है।

# १८५७, महर्षि दयानन्द और श्री निहालसिंह आर्य

– डॉ भवानीलाल भारतीय

जनज्ञान के एक विगत अंक में श्री निहालसिंह का लेख १८५६ तथा महर्षि दयानन्द के विषय में छपा है उसी संदर्भ में यह लेख डॉ. भवानीलाल भारतीय ने प्रेषित किया, जिसमें श्री आर्य की कुछ घटनाओं का खंडन है प्रस्तुत लेख हम जनज्ञान की विचार स्वतन्त्रय की नीति का पालन करते हुए प्रकाशित कर रहे हैं।

मैं जनज्ञान के भाद्र २०४६ वि० के अंक में छपे दिल्ली निवासी मास्टर निहालसिंह के उस लेख का नोटिस भी नहीं लेता, यदि उन्होंने मुझे नहीं घसीटा होता। मेरा यह निश्चित मत है कि आदमी को अपनी कलम उसी विषय पर चलानी चाहिए जिस पर उसका अधिकार हो। यों सामान्य चर्चा तो आप किसी भी विषय की कर सकते हैं, किन्तु हर बात में विशेषज्ञता का दम्भ भरना उचित नहीं। मास्टर निहालसिंह मेरे पुराने मित्र हैं। उन्होंने मुझे योग्य विचारक, चिन्तक और पुरूषार्थी विद्वान जैसे बहुमूल्य गुणों से विभूषित किया है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। तथापि निवेदन करता हूँ कि स्वामी दयानन्द के जीवन, व्यक्तित्व, विचार, कृतित्व आदि की विस्तृत समीक्षा सर्व सामान्य के अधिकारक्षेत्र में नहीं आती। यदि उन्हें मेरे विचारों पर कोई आपत्ति है तो वे मेरे लिखे उन सैकड़ों लेखों को आद्योपान्त, दत्तावधान होकर देखें जो मैंने विगत २४ वर्षों में इसी विषय पर लिखे हैं। वे अज्ञात जीवनी के प्रवृतक दीनबंधु वेद शास्त्री के मत पर की गई मेरी विस्तृत टीका को सार्वदेशिक, परोपकारी आदि पत्रों की फाइलों में देखें। पुनः सच्चिदानन्द योगी जी के मत के खण्डन में लिखे गये मेरे दर्जनों लेखों को आर्य मर्यादा की फाइलों में पढ़ें जो सत्तर के दशक में लिखे गये थे। पुनः श्री आदित्यपालसिंह द्वारा अज्ञात जीवनी के पुनः संस्करण की विस्तृत आलोचना परोपकारी के उन अंकों में पढ़ें जो गत दशक के अन्तिम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं।

इतना होमवर्क करने के पश्चात् भी वे कलम उठाने की जल्दी नहीं करें। कभी फुरसत निकाल कर मेरे सान्निध्य में २-४ दिन रहें। मेरे पुस्तकालय में संगृहीत महर्षि विषयक अपूर्व और दुर्लभ सामग्री का निरीक्षण परीक्षण करें। व्यर्थ की लिखा पढ़ी में न जाकर इस विषय के सभी पहलुओं पर मुझ से विस्तृत चर्चा करें। यह न कर जब वे लेख लिखने के लिये व्याकुल हो ही गये तो मेरा भी उत्तर सुन लें।

जिस सर्व खाप पंचायत के रेकार्ड का उल्लेख उन्होंने इस तथा पूर्व के लेखों में किया है, उनमें कोई सार नहीं है। यह सारी सामग्री जाली है, समय पर बनाई जाती है और हमारे मास्टर जी जैसे भोले भाले लेखक बिना गम्भीर इतिहास ज्ञान के इसे यत्र तत्र लेख रूप में छपाते रहते हैं। मेरा उनसे निवेदन है कि दयानन्द से इतर इस पंचायत में संगृहीत तथ्यों को, जैसा उन्होंने गत अनेक वर्षों में सर्वहितकारी आदि पत्रों में प्रकाशित कराया है, वे किसी निष्पक्ष इतिहास कार के समक्ष ले जायें तथा किसी विश्वविद्यालय के प्रामाणिक इतिहासज्ञ से उसकी जाँच करायें और उसके नतीजों से मुझे अवगत करायें। मुझे स्मरण तो नहीं है, किन्तु केवल याददाश्त के आधार पर ही लिख रहा हूँ कि सम्राट हर्षवर्धन तथा अन्य प्राचीन राजाओं के बारे में इस पंचायत के रेकार्ड को मास्टर जी ने जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उसे देख कर ही उसे गम्भीर इतिहासकार रद्दी की टोकरी में डाल देगा। लगता है कि प्रान्त विशेष (हरियाणा) की श्रेष्ठता तथा जाति विशेष की उत्कृष्टता से ग्रस्त कोई पूर्वाग्रही योजना इस सामग्री के बीजवपन, पल्लवन तथा पुष्पित फलित होने में सक्रिय है। स्वामी ओमानन्द जी ने ही व्यक्तिगत भेंट में मुझे बताया कि यह सामग्री समय समय पर कुछ स्वार्थी लोगों द्वारा बनाई जाती है और उसे प्रचारित किया जाता है। मास्टर जी के इस लेख में भी अनेक दन्त कथायें संगृहीत की गई हैं जिनको प्रथम दृष्टि में ही अस्वीकार करना होगा। यथा-

1. ओमानन्द, पूर्णानन्द आदि चार सन्यासियों की कपोल कल्पित कथा जो मास्टर जी ने अन्यत्र भी अनेक बार दोहराई है।

2. भारत में अंग्रेजी राज (लेखक पं० सुन्दरलाल) के उद्धरणों से मास्टर जी का यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी है कि यह सारे उल्लेख उनके पक्ष में जाते हैं।

3. स्वामी वेदानन्द, वेदवागीश लिखित महर्षि के जीवन-चरित को पढ़ने के पहले मास्टरजी पं० लेखराम, पं० देवेन्द्रनाथ, स्वामी सत्यानन्द, हर विलास शारदा, डॉ० जार्डन्स, यदि अन्यथा न लें तो मेरे द्वारा लिखित 'नवजागरण के पुरोधा-दयानन्द सरस्वती' को भी पूर्वापर घटना क्रम को समझते हुए, ऋषि दयानन्द की विकास शील विचार-परम्परा तथा कार्य कारण संबंधों को ध्यान में रखकर पढ़ें। १८५७ में ऋषि का योगदान दिखाने में जल्द बाजी न करें, क्योंकि ऐसी जल्दबाजी न तो जयचन्द्र विद्यालंकार ने की है और न पृथ्वी सिंह मेहता विद्यालंकार ने। मात्र उन्होंने सम्भावना ही प्रकट की है, कि ऐसा होना संभव है। सम्भावना को भी प्रमाणित करना पड़ता है और अभी तक कोई भी ऐसा सुनिश्चत प्रमाण नहीं मिलसका है जिससे महर्षि की १८५७ की हलचल में कोई भूमिका निश्चित की जा सके। पं० दीनबन्धु, स्वामी सच्चिदानन्द तथा श्री आदित्यपाल आदि ने इसी सुन्दर सम्भावना को यथार्थ का जामा पहनाने का स्वकल्पना के बल पर यत्न किया तो उन्हें मुंह की खानी पड़ी। उन पर आज भी मेरी अलोचनायें और आपत्तियें यथावत् हैं। अब मास्टर जी कुछ विशेष ज्ञातव्य बातों की परीक्षा कर लें।

1. 1857 से 1956 तक स्वामी विरजानन्द ने मथुरा में लाखों लोगों को बुला कर जन्माष्टमी पर स्वाधीनता संग्राम का प्रबल गुप्त प्रचार किया। इसमें विशाल हरयाणा की जनता अधिक थी।

**समीक्षा :** गुरूजी ने मथुरा में लाखों (इस शब्द पर ध्यान दें) आदमी बुला लिये और अंग्रेज सरकार को पता तक नहीं चला। उस समय तो मथुरा की जनसंख्या भी लाखों की नहीं थी। ऐसी चण्डूखाने की गप्प मारना मास्टर जी को शोभा नहीं देता। और वहां विशाल हरियाणा कहां से आ गया। विशाल हरयाणा तो राव वीरेन्द्र सिंह का अविष्कार है।

2. मास्टर जी के अनुसार स्वामी जी समय समय पर राव तुलाराम, राजा नाहर सिंह (ये कहाँ के थे, एक राजा नाहर सिंह शाहपुरा का उल्लेख ऋषि जीवन में आता है, किन्तु उनसे तो महाराज की भेंट बहुत बाद में हुई। (१८५७ में तो राजा नाहरसिंह दो वर्ष के बालक ही थे।) तांत्या टोपे तथा रानी लक्ष्मी बाई आदि से मिले। इसकी पुष्टि में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

3. मास्टर जी की यह बात तो नितान्त हास्यास्पद ही है कि उस समय (१८५७) में स्वामी जी गुजराती, हरयाणवी मिश्रित हिन्दी बोलते थे। यदि वे इतना ही कहते कि गुजराती मिश्रित हिन्दी बोलते थें, तब भी कोई बात थी, किन्तु स्वामी जी की भाषा में यह हरयाणवी कहाँ से घुस आई। उस समय तक तो उन्होंने हरयाणे में कदम भी नहीं रक्खा था। जीवन चरित साक्षी है कि ऋषि ने हिन्दी का पूर्ण अभ्यास बहुत बाद में किया। वे प्रायः संस्कृत में ही अपने विचार प्रकट करते थे। अच्छा होता यदि मास्टर जी दयानन्द चरित की आलोचना में संकुचित प्रान्तीयता को न लाते।

4. स्वामी जी को न तो किसी का भय कभी रहा और स्वप्रान्त छोड़ देने के पश्चात् तो परिवार वालों से अपने पकड़े जाने की भी सम्भावना समाप्त हो गई थी। स्वामी जी का कोई क्रिया कलाप कभी गुप्त नहीं रहा। उन्होंने जो कुछ कहा और किया-डंके की चोट पर।

5. मास्टर जी की यह बात हमें खूब हंसाती है कि स्वामी दयानन्द के बदले नाम (?) मूल शंकरा, रेवानन्द और दयाल भी थे। हमने तो अब तक महाराज के बचपन के दो नाम मूल शंकर तथा दयाल जी (अथवा दयाराम) ही सुने थे, किन्तु मास्टर जी कहते हैं कि १८५७ में भी वे मूल शंकर (इसे वे मूल शंकर) लिखते हैं) नाम से ही जाने जाते थे। रेवाशंकर जैसे नये नाम का अविष्कार करने पर तो उन्हें पुरस्कृत ही किया जाना चाहिए। तथ्य है कि स्वामी जी के परिवारिक नाम का ज्ञान तो कुछ ही लोगों को था, अन्यथा, वे लोक में 'दयानन्द सरस्वती' के नाम से जाने जाते थे।

6. स्वामी जी के हरयाणा प्रेम को उजागर करने वाला एक और वाक्य देखें-"फिर दिल्ली के चारों ओर खापों, पंचायतों में देशप्रेम,, वीरता, सदाचार और सात्विक भोजन देखा था।" इस पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। स्वामी जी की किसी प्रान्त में आसक्ति नहीं थीं।

7. स्वामी दयानन्द का १८५५ में स्वामी पूर्णानन्द की गुप्त साधु सभा में आना, बिठूर में पांच दिन तक नाना साहब से भेंट तथा उनकी नाना से कुल ग्यारह मुलाकातें आदि की चर्चा भी अनगढ़ गप्प और कहानी से अधिक नहीं है। स्वामी जी जीवन में कहाँ कहाँ, कब से कब तक रहे, इस पर परिश्रम करने वाले प्रो० महेश प्रसाद मौलवी द्वारा तैयार की गई तालिकाओं को शायद उन्होंने कभी देखा ही नहीं! किन्तु उनका दोष भी क्या, यह उनका विषय ही नहीं है। इन विषयों पर मगजपच्ची करने वाले तो लेखराम, देवेन्द्रनाथ, भगवत्दत्त, युधिष्ठिर मीमांसक आदि थे। मास्टर जी और तत् सदृश लोगों के लिये यह आउट ऑफ कोर्स है।

8. मास्टर जी ने अपने मत की पुष्टि में स्वामी वेदानन्द वेदवागीश, स्वामी भीष्म, पं० बस्तीराम आदि के नाम भी दिये हैं। ये सभी हमारे लिये पूज्य तथा वंदनीय हैं, किन्तु उनकी सभी बातें प्रमाण कोटि में नहीं आतीं।

9. मास्टर जी तो कभी कभी इतने आश्वस्त भाव से लिखते हैं मानो १८५७ के सारे सरकारी रेकार्ड, पुरातत्व अभिलेख तथा गोपनीय सूचनायें उन्हें अंग्रेजों ने हस्ताकमलवत् उपलब्ध करा दी थीं। १८५७ के बड़े बड़े इतिहासकारों यथा के०, मालेसन, रमेशचन्द्र मजूमदार रामविलास शर्मा, सावरकर आदि को भी जो तथ्य प्राप्त नहीं हुए उन्हें मास्टर जी बड़ी मासूमियत से लिख बैठे। जरा बानगी देखें-"राजविद्रोहियों की खुफिया जाँच करने वाले स्वदेशी, विदेशी सरकारी कर्मचारियों से स्वामी दयानन्द की ३१ बार मुठभेड़ हुई थी। मगर उनके तेज-से हतप्रभ होकर, क्षमा मांग कर वे (अंग्रेजी फौजी अफसर) झुक कर चले जाते थे। "मास्टर जी की इस कल्पनाशीलता पर दाद देने का जी चाहता है। यह लिखते समय वे अपना पहले का यह कथन भूल गये कि स्वामी जी अंग्रेजी शासकों से स्वयं को बचाने के लिये सदा सचेष्ट रहे और अपनी इन गोपनीय गतिविधियों को कभी प्रकट होने ही नहीं दिया। यहाँ तो उन्होंने कमाल ही कर दिया। उनके अनुसार - 1. अंग्रेज कर्मचारियों से उनकी ३१ बार मुठभेड़ हुई और ये अंग्रेज भी कैसे थे कि गदर के इस सेनानायक को देख कर 2. हतप्रभ हो जाते। 3. क्षमा माँगते, 4. और झुक कर चले जाते। इन दन्त कथाओं से बच्चों का मन भले ही बहल जाये दयानन्द चरित के अनुशीलनकर्ता को तो क्षोभ, ग्लानि और आक्रोश ही होगा। अगर अंग्रेजों में ऐसी ही क्षमाशीलता होती तो शायद वे मास्टर जी के कहने मात्र से ही भारत छोड़ कर चले जाते।

10. मास्टर जी रचित बेताल पच्चीसी की एक और कथा सुनिये - १८५८ में एक अंग्रेज (नाम मास्टर जी को भी मालूम नहीं) १५ घुड़सवार सहित उनके पास आया, प्रश्नोत्तर किये, स्वामी जी की दिव्य ज्योति से बेसुध होकर उनके कदमों पर गिर पड़ा, क्षमा मांगी उन्हें मसीहा (ईसा मसीह का अवतार माना) माना और १२५ रूपये नकद भेंट देकर चला गया। "देखिये कितना बड़ा चमत्कार हो गया। इस कथा का स्रोत तो मास्टर जी बतायेंगे नहीं, यदि यह कहानी भी सर्व खांप पंचायत की है तब तो कथा बनाने वालों की बलिहारी। अंग्रेज अश्वारोही का कमाल देखिये - स्वामी जी से अंग्रेजी में सवाल जवाब भी कर लिये। स्वामी जी जो अंग्रेजी का एक फूटा अक्षर भी नहीं जानते थे, अंग्रेज के प्रश्नों का धारा प्रवाह उत्तर देते रहे और अन्त में इस अंग्रेज शिष्य से १२५/- रू० नकद दक्षिणा धरा ही ली।

अफसोस, दयानन्द का जीवन चरित ऐसे अनाड़ियों के हाथों ही बर्बाद होना है तो फिर हम किसको रोयें और किसे दोष दें। यहां तो कुओं में ही भंग पड़ गई। पं० दीन बंधु, सच्चिदानन्द योगी तथा आदित्यपाल जी की परम्परा में तो मास्टर जी ने भी अपनी जगह सुरक्षित कर ली, किन्तु पं० लेखराम, मुखोपाध्याय, भगवतदत्त, महेशप्रसाद तथा युधिष्ठिर मीमांसक जैसे शोधकर्मियों की परम्परा में अब कौन बचा है? मैनें अकेले ही इन मूर्खतापूर्ण बातों का खण्डन करने का ठेका क्यों ले लिया, तभी तो मेरे कई मित्र भी मुझे अहंकारी और दयानन्द विषयक सर्वज्ञ होने का दम्भ भरने वाला कहते हैं।, किन्तु मैं स्वयं तो यही कहता हूँ - बंधुजन की उच्छिष्ट मात्र है मेरी बानी। अब आप मेरी बातें मानें या मेरे कुछ मित्रों की, यह आप पर ही है। आगे निवेदन इतना है कि यदि दयानन्द की गांठ में मथुरा जाने के पहले ही १२५/- रू० नकद आ गये तो उन्होंने - 1. क्यों दुर्गा खत्री के यहाँ सूखे चने चबाये और चने की रोटी खाकर जीवन निर्वाह किया। (पं० लेखराम पृ० ४५). 2. गोर्वधन सर्राफ की दुकान से रोशनी के लिये चार आना मासिक क्यों बंधवाया। (पं० लेखराम पृ० ४५). ३. क्यों हरदेव पत्थर वाले से दूध के लिये दो रूपया मासिक लेते रहे। ४. जोशी अमरलाल के सदावृत में मुफ्त की रोटी तोड़ी (पं० लेखराम

पृ० ४५) उनके कुछ महीने तो इन १२५/- रू० से आनन्द पूर्वक व्यतीत हो जाते। मास्टर जी, यह सब उलूल जलूल लिखने के पहले पं० लेखराम, देवेन्द्रनाथ आदि के द्वारा लिखित महाराज के जीवनचरितों को पढ़ने की तकलीफ तो की होती। किन्तु आप तो अपने अंग्रेजों की लीक पर ही चलने वाले हो। यदि दयानन्द की गांठ में कुछ रूपये होते तो वे गुरू दक्षिणा के लिये मात्र लौंग ही क्यों जुटाते। खनखनाते चांदी के रूपये दण्डी जी के सामने रख देते। किन्तु इन सब बातों से यार लोगों को क्या? मास्टर जी मुखोपाध्याय जी की इन पंक्तियों को ही पढ़ने का कष्ट करें- दयानन्द सन्यासी थे, फूटी कौड़ी तक पास नहीं थी, उनके पास दक्षिणा के लिये रूपये कहाँ से आते।" (जीवनचरित भाग । पृ० १०३)

स्वामी जी के सोरों प्रवास (१८६८ का आरम्भ) में मास्टर जी के अनुसार स्वामी दयानन्द के सेवक के रूप में सौरभ गांव की सर्वखांप पंचायत के मंत्री चौधरी नानकचन्द उनके साथ थे। श्री निहालसिंह को यह ज्ञात नहीं कि अवधूत अवस्था में स्वामी जी सर्वथा निस्संग विचरते थे। इनके साथ सेवक आदि रसोइया रूप में बहुत बाद में रहने लगे। सोरों में वे एकाकी, निरीह, कौपीनमात्र, वस्त्रधारी परमहंस के रूप में विचरे थे। अतः चौधरी नानकचंद की गुप्त वार्ता और उसकी नकल यह सब धूर्तों द्वारा रचित जाल मात्र है।

अब डा० सत्यकेतु विद्यालंकार द्वारा लिखित तथ्यों की परीक्षा करें। डा० साहब से मेरा १६८० से उनकी मृत्युपर्यन्त सम्बन्ध रहा। गुरूकुल कांगड़ी में उनसे इस विषय पर अनेक बार चर्चा भी हुई है। वे इन बहुप्रचारित बातों के लिये प्रमाणों की तलाश में सभाओं के व्यय पर लंदन भी हो आये, किन्तु क्या उन्होंने अपने अनुसंधान की कोई प्रमाणिक रिपोर्ट सार्वदेशिक सभा को दी? फ्रैंच भाषा के किसी उपन्यास के आधार पर दयानन्द विषयक अन्वेषण नहीं होता। जिस मरयम नामक उपन्यास की चर्चा डा० सत्यकेतु ने की है, उसमें उल्लिखित दयाल जी साधु दयानन्द हैं, इसमें क्या प्रमाण है? स्वामी दयानन्द तो कभी दयाल जी के नाम से लोक में जाने ही नहीं गये। अब डा० सत्यकेतु दिवंगत हो चुके हैं, अतः उनकी चर्चा का कोई लाभ नहीं है।

अन्त में मास्टर जी ने अपने पक्ष समर्थन में सर्व श्री क्षितीश वेदालंकार, जगन्नाथ विद्यालंकार, रामेश्वरदयाल गुप्त, हकीम रामशंकर गुप्त, पं० प्रकाशवीर शास्त्री तथा बनारसीसिंह आदि सज्जनों के नाम दिये हैं। उनमें से प्रत्येक के विचारों पर टिप्पणी करना आवश्यक नहीं। कुछ वर्षों पूर्व बम्बई में जब मैं और पं० क्षितीश जी आर्यसमाज काकड़वाड़ी में इकट्ठे थे तो इस विषय की चर्चा चली। जब मैंने बहस (आप इसे मैत्री पूर्ण संवाद ही समझें) आगे बढ़ाने की इच्छा जाहिर की तो प० क्षितीशजी ने कहा कि यह उनका विषय नहीं है। सज्जन आदमी का यही लक्षण है। मैं यदि गणित और रसायन पर, जिन्हें मैं नहीं जानता, बहस करूं तो यह मेरी हिमाकत ही होगी।

अन्त में मास्टर जी मेरे बारे में लिखते हैं - १८५७ संग्राम के सहयोगी स्वामी दयानन्द के मुख्य विरोधी डॉ० भारतीय हैं। "मास्टर जी अपनी भाषा को सुधार लें क्योंकि यह वाक्य तथ्यों के विरूद्ध है। इससे ध्वनि निकलती है कि मैं स्वामी दयानन्द का मुख्य विरोधी हूँ। स्वामी जी के विरोधी तो स्वामी विशुद्धानन्द आदि थे। मैं तो उनका अनुयायी, किंकर मात्र हूं। आगे उनका आरोप है कि मैं १८५७ की क्रांति को सिपाही विद्रोह मानता हूं। मेरा निजी मत मैंने कभी नहीं बताया। १८५७ की क्रांति को सिपाही विद्रोह मानने वाले बहुत से पाश्चात्य तथा भारतीय इतिहासकार अवश्य हैं। मेरा इसमें कुछ भी मतामत नहीं है। यदि कभी स्वमत व्यक्त करने का अवसर आयेगा तो अवश्य करूँगा परन्तु मास्टर जी शीघ्रता में कोई निष्कर्ष न निकालें। मास्टर जी ने मुझे पूर्वाग्रह मण्डित मानते हुए भी योग्य विचारक, चिन्तक, विद्वान आदि कहा, यह उनका बड़प्पन है। मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो आज भी उन तथा अन्यों से कहता हूं कि वे तथ्यों की पूरी छानबीन किये बिना लेखनी न चलायें अन्यथा वे ऐसा ही अनर्गल लिखेंगे जैसा मास्टर जी ने लिखा। मेरी इस समीक्षा में यदि कोई जाने अनजाने कटु शब्द आये हों तो उनके लिये करबद्ध क्षमा। इतना तो स्वीकार करता ही हूं कि लेख की शैली में जो रिक्तता है वह मेरे दिल की पीड़ा ' के कारण आई है, क्योंकि स्वामी जी के बारे में निराधार, प्रमाण रहित, बिना सिर पैर की, तथ्या हीन, हास्यास्पद बातें लिखी जाती हैं। यदि हमारे पत्रों और उनके छपे इस कोटि के लेखों को कोई प्रबुद्ध विद्वान पढ़ता है तो यही मानेगा कि आर्य समाज में दयानन्द विषयक शोध का क्या यही स्तर रह गया है? □□

# समाचार दर्शन

**आर्य समाज सान्ताक्रुज**

आर्य समाज मन्दिर सान्ताक्रुज बम्बई में ६ अक्टूबर से १६ तक किया सामवेद पारायण महायज्ञ तथा वृष्टियज्ञ का आयोजन यिा गया एवं वेद प्रचार सप्ताह मनाया गया। इस अवसर पर यज्ञ के ब्रह्मा डा० सोमदेव शास्त्री ने नित्य प्रातः ७ से ६-३० बजे तक महायज्ञ के महत्व पर निरन्तर आठ दिन तक अपने व्याख्यान दिये। इसके अतिरिक्त तीन दिन तक रात्रि व्याख्यान माला का भी आयोजन किया गयां और वेद में वर्णित पुरूष सूक्त पर विशेष व्याख्यान डा० सोमदेव जी शास्त्री के हुए। भारी संख्या में जनसाधारण ने व्याख्यानों का लाभ उठाया।

दयानंद संस्थान के प्रमुख सहयोगीव अ० भा० हिन्दू महा सभा के पूर्व अध्यक्ष आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता एवं गोभक्त प्रो० रामसिंह का ६७वां जन्म दिवस दिनांक ३० नवम्बर को दीवान हाल आर्य समाज, चांदनी चौक में मनाया गया। स्वामी ,आनन्द बोद्ध सरस्वती, (अध्यक्ष सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा)

डा० जे० के० जैन सांसद (भा० ज० पार्टी) श्री बलराज मधोक स्वामी उत्तम प्रकाश एवम् श्री सूर्यदेव, अध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली आदि ने प्रो० रामसिंह के जीवन के विभिन्न पक्षों पर विस्तार सहित प्रकाश डाला।

आर्य समाज नया बांस में भी प्रोफेसर रामसिंह जयंति पर सभा आयोजित की गयी।

**आर्य समाज ने मदगंज ओइम्**

आर्य समाज नेमदारगंज (नवादा) द्वारा वेद प्रचार सप्ताह रक्षा बंधन से श्री कृष्ण जन्मआष्टमी तक धूम-धाम से मनाया गया। जिसके अन्तर्गत ग्यारह घरों में हवल यज्ञ एवं पारिवारिक सत्संग का कार्य सम्पन्न हुआ।

अनेक वक्ताओं ने श्रावणी उपाकर्म पर प्रकाश डाला।

**शोक समाचार**

मोहाना आर्य समाज के कर्मनिष्ठ तथा अवैतनिक पुरोहित श्री हरवारण का देहावसान ५ सितम्बर को प्रातः चार बजे हो गया। आपने अपने अथक प्रयास क्षरा ग्राम मोहाना जि० बुलन्दशहर में आर्य मन्दिर का निर्माण कराया था। आप ग्राम माजरा नि० मेरठ के निवासी थे।

अलीगंज (एटा) के मु० राम प्रसाद चौधरी व वरिष्ठ पत्रकार डा० सुनील गुप्त की दादी श्रीमति वरका देवी का स्वर्गवास गत दिवस हो गया उनकी शवयात्रा में पूर्व विधायक,, आर्य समाज से जुड़े लोग, गणमान्य व्यक्ति शामिल हुए।

**गुरूकुल प्रभात आश्रम**

गुरूकुल प्रभात आश्रम (मेरठ) द्वारा भोलाझाल पर लगने वाले गंगादशहरा के मेले में वेदधर्मप्रचार का आयोजन किया गया। इसमें जहाँ यज्ञ, प्रवचन एवं सरस भजनों का कार्यक्रम था। वहीं ब्रह्मचारियों द्वारा प्रदर्शित बल प्रदर्शन का प्रेरणास्पद कार्यक्रम भी हुआ। ब्रह्मचारियों के व्याख्यान अन्ताक्षरी सैन्य प्रमाण गीतिका आदि का श्रवणकर लोग भाव विभोर हो गये एवं गुरूकुल को दान भी दिया। अगले दिन स्नातकों के प्रस्थान दिवस ने एक नया ही वातावरण उत्पन्न कर दिया। हर्ष एवं विषाद से मिश्रित वातावरण में ब्रह्मचारियों द्वारा पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी द्वारा निर्मित "प्राणों से हमको प्यारा कुल हो सदा हमारा" इस गीतिका ने सभी लोगों को भाव विभोर कर दिया।

**विद्वत गोष्ठी सम्पन्न**

स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती प्रधान परोपकारिणी सभा के मार्गदर्शन एवं अध्यक्षता में आर्य विद्वानों की एक बैठक ६ सितम्बर को गुरूकुल गौतम नगर नई दिल्ली में सम्पन्न हुई। बैठक में सत्यार्थ प्रकाश के विभिन्न संस्करणों के पाठों का विवेचन पाण्डुलिपियों के संदर्भ में किया गया। इसमें विद्वानों ने कार्य की अनेक दिशाओं की ओर ध्यान दिलाते हुए सत्यार्थ प्रकाश के गौरव को अक्षुण्ण रखने का विचार व्यक्त किया। इस गोष्ठी में स्वामी ओमानन्द स्वामी सुमेधानन्द, स्वामी विद्यानन्द, स्वामी जगदीश्वरानन्द स्वामी दीक्षानन्द पंडित क्षितीश वेदालंकार, पंडित उमाकान्त उपाध्याय डा० सुदर्शनदेव शास्त्री, आचार्य वेदव्रत शास्त्री, पंडित विशुद्धानन्द डा० वेदपाल सुनीथ, डा० धर्मवीर डा० ज्वलन्त कुमार शास्त्री, आचार्य हरिदेव आदि ने अपने विचार रखे। श्री विरजानन्द देवकरणि एवं श्री धर्मवीर ने कार्य के इतिहास एवं परिस्थितियों से विद्वानों को अवगत कराया।

सभा मंत्री श्री गजानन्द आर्य ने विद्वानों का धन्यवाद ज्ञापन किया।

# वेद मन्दिर में यज्ञशाला के पुनर्निर्माण में सहायता का अनुरोध

मान्य बन्धु ! सादर नमस्ते ।

देव दयानंद के संदेश को देश–विदेश में फैलाने की भावना को मन में बसाकर महात्मा वेदभिक्षुः ने जिन्हें आर्य जगत पं. भारतेन्द्रनाथ के नाम से भी जानता है, दयानंद संस्थान (पंजीकृत) के अंतर्गत वेद मन्दिर की स्थापना शहर की भीड़भाड़ से दूर ग्राम इब्राहिमपुर में की थी ।

दयानन्द संस्थान द्वारा स्थापित वेद मन्दिर इब्राहीमपुर में भव्य यज्ञशाला का निर्माण भी उनकी कल्पना थी । यज्ञशाला तो वेद मन्दिर में है, किन्तु हमारी इच्छा है कि उसे विस्तार और संवार कर भव्य रूप दिया जाए, जिससे वहां प्रतिदिन होने वाला यज्ञ सुविधा सहित संपन्न हो सके ।

इस भव्य यज्ञशाला के पुनर्निर्माण और विस्तार तथा मन्दिर में बने कमरों को पुख्ता रूप देने के लिए एक लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है ।

दयानंद संस्थान आप सब सुहृदय और महर्षि दयानंद के प्रति आस्थावान सज्जनों के सहयोग से ही नितांत अल्पमूल्य पर चारों वेदों का हिन्दी भाष्य, महर्षि दयानन्द और अन्य वैदिक विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों का प्रकाशन करता रहा है । ग्रामीण क्षेत्रों में वेद प्रचार कार्य का विस्तार और संस्कृत पाठशाला

आपके सहयोग से ही हम महर्षि की विचारधारा को जन–जन तक साहित्य के माध्यम से पहुंचाने में जुटे हैं । वेद मन्दिर में वानप्रस्थी जनों के आवास की व्यवस्था भी हमारा सपना है ।

इन सभी योजनाओं को साकार रूप देने में आप पूर्ण सहयोग देंगे, इसी विश्वास के साथ आप से हम अनुरोध कर रहे हैं ।

सहयोग के लिए पसारे गए इस आंचल को आप अपनी समाज, अपनी संस्था और व्यक्तिगत सहयोग से भरेंगे ऐसी मुझे आशा ही नहीं अपितु विश्वास है ।

इस पुनीत कार्य में सहयोग की राशि दयानन्द संस्थान के कार्यालय में चैक, ड्राफ्ट नकद अथवा धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा भिजवाइए ।

राकेश रानी
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान
करोलबाग नई दिल्ली

मुद्रक : प्रकाशक व सम्पादक : पंडिता राकेश रानी द्वारा 'जनज्ञान' मुद्रणालय दिल्ली–36 से मुद्रित एवं प्रकाशित

जन-ज्ञान (मासिक) वेद मंदिर महात्मा
वेदभिक्षु: सेवाश्रम लेखरामनगर (इब्राहीमपुर)
P.O.मुखमेलपुर, दिल्ली-36

मार्ग शीर्ष
संवत २०४९
नवम्बर १९९२

Posted at N.D. PSO on
Date 5 & 6– Delhi Postal
Registration No. DL-11165
R.N. 10719/65



# प्रभावशाली धार्मिक साहित्य

1. चारों वेदों का हिन्दी भाष्य — मूल्य 700 रु.
2. सामवेद : आध्यात्मिक भाष्य (पं. विश्वनाथ विद्यामार्त्तण्ड) — 101 रु.
3. वेद–ज्योति — 25 रु.
4. वेदांजलिः (वर्ष के 365 दिनों के लिए 365 वेद मन्त्रों की व्याख्या) — 50 रु.
5. सोमसरोवरः (सामवेद के पावमान पर्व की व्याख्या) — 50 रु.
6. भारत के वीर बच्चों की कहानियां — 5 रु.
7. संस्कार विधि (सजिल्द) — 25 रु.
8. सरस्वतीन्द्र जीवन (महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र) — 50 रु.
9. यज्ञ - मीमांसा (अग्निहोत्र दर्पण) (डा. रामनाथ वेदालंकार) — 50 रु.
10. सत्यार्थ–प्रकाश (10"x15") स्थूलाक्षर
    (सादे पेपर पर) — 175 रु.
    (आर्ट पेपर पर) — 400 रु.
11. ज्योति स्तम्भ — 15 रु.
12. वैदिक सम्पत्ति — 151 रु.
13. धर्म का मार्ग — 5 रु.
14. योगासन — 3 रु.
15. योग और ब्रह्मचर्य — 5 रु.
16. Concept of God — 50 रु.
17. श्रीमद्दयानन्द प्रकाश — 50 रु.
18. Light of Truth — 80 रु.
19. प्रकृति और सर्ग (आचार्य उदयवीर शास्त्री) — 10 रु.
20. वैदिक गीता का सरल हिन्दी भाष्य — 50 रु.
21. संक्षिप्त महाभारत — 50 रु.
22. संक्षिप्त रामायण — 12 रु.
23. गायत्री मन्त्र का चार्ट हिन्दी व्याख्या सहित दोनों और पत्ती लगा कम से कम दस प्रति मंगायें । — 3 रु.

100 से अधिक साहित्य पर कमीशन 15 प्रतिशत 300 से अधिक लेने पर 20 प्रतिशत तथा 500 से अधिक लेने पर 25 प्रतिशत होगा ।

# हिन्दू धर्म रक्षक साहित्य बांटिए

1. मोपला (उपन्यास) – वीर सावरकर — 6.00 रु.
2. क्या आप सारा भारत दारुल इस्लाम बनने देंगे ? — 1.00 रु.
3. हिन्दुओं को चेतावनी – वेदभिक्षु : — 1.00 रु.
4. भारत के मुसलमानों का क्या करें ? –वेदभिक्षुः — 1.00 रु.
5. हम सब हिन्दू हैं – वीर सावरकर — 1.00 रु.
6. पोस्टर दो प्रकार के — 2.00 रु.
7. इस्लाम में क्या है ? – राकेशरानी — 1.00 रु.
8. इस्लामिस्तान बनाने की तैयारियाँ– –जहीर नियाजी — 1.00 रु.
9. हिन्दू जागो ! देश बचाओ — 1.00 रु.
10. इस्लाम – एक परिचय — 1.00 रु.
11. A Challange to the Christian Faith — 50 पैसे
12. पोप की सेना का भारत पर हमला –वेदभिक्षुः — 1.00 रु.
13. पादरियों को चुनौती — 1.00 रु.
14. बाईबल की चुनौती — 1.00 रु.
15. क्या ईसा खुदा का बैठा था ? — 1.00 रु.
16. और पादरी भाग गया — 1.00 रु.
17. Christianity Unmasked — 2 रु.
18. The Qlarion Call — 1.00 रु.
19. हमने इस्लाम क्यों छोड़ा ? — 1.00 रु.
20. क्या भारत का एक और विभाजन होगा ? — 1.00 रु.
21. हिन्दू राष्ट्र के नाम मां का संदेश — 1.00 रु.
22. हिन्दू जागेगा, देश का संकट भागेगा । — 1.00 रु.
23. जनज्ञान का 'सावरकर विशेषांक' — 6 रु.
24. जनज्ञान का 'क्रान्तिदूत विशेषांक' — 6 रु.

"हिन्दू धर्म रक्षक" साहित्य की 1000 पुस्तकें मंगाने पर 50 प्रतिशत और 500 पुस्तकें मंगाने पर 25 प्रतिशत कमीशन है । प्रत्येक आदेश के साथ सम्पूर्ण अथवा कम से कम 1/4 धन अग्रिम अवश्य भेजें ।

## दयानन्द संस्थान

## 2286 आर्य समाज मार्ग, करोल बाग नई दिल्ली–5